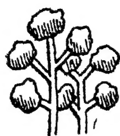
डाली नहीं फूलती

शानी

हंस प्रकाशन
इलाहाबाद



प्रकाशक
हंस प्रकाशन
इलाहाबाद

मुद्रक
भार्गव प्रेस
इलाहाबाद

आवरण तथा वर्ण लिपि
कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव

मूल्य
तीन रुपया

डाली नहीं फूलती

भाई धनन्जय वर्मा और नूर काजीपुरी को—

बीच वाले कमरे मे आते ही आँगन मे बिखरी धूप अहमद की आँखोमे यो चमककर भर गयी जैसे किसी ने आइना चमका दिया हो ! यूँ भी अहमद मियाँ की आँखे पूरी तरह खुल नही पायी थी और वह बिस्तर छोड कर उठ गए थे । उन्हे गुमान भी न था कि इतनी तेज़ धूप चढे आज वह सोते रहेगे । नीदभरो आँखो को धूप की चम-चमाहट से बचाने के लिए वह दरवाज़े के पास से हटकर एक ओर हो गए और आँखो और शरीर मे स्फूर्ति आने की प्रतीक्षा करने लगे ।

कमरे का दरवाजा बरामदे की ओर खुलता था और उससे लगा ही बावर्ची खाना है ! वहाँ से उठा-पटक और बर्तनो की आहट सुनकर अहमद मियाँ ने अनुमान लगाया कि उनकी बहू—रशीद की दुल्हन—नाश्ता बनाने मे लगी होगी । बरामदे से कोई एक-दो लोगो के बात करने की आवाज़ मिल रही थी । उन्होंने अपनी बीवी की आवाज़ पहिचान ली । एक दुखभरी लम्बी साँस के साथ यह सुनाई दिया—बस, जिधर देखो, बेईमानी, धोखा और मक्कारी, लेकिन ज़रा

सब्र रखो अम्माँ । अल्लाह सबका देखने वाला है । बेईमान का धन किमी को फला है कि उस माटीमिले को ही फलेगा ।

उस सहानुभूति के जवाब मे अबकी बार जो रुलाई का स्वर आया उससे अहमद मियाँ एक दम चौकन्ने हो गये कि कही बुढिया न हो ।

अपने दुख मे बराबरी के साथ उनकी पत्नी को दुखी होती देख, उसकी रुलाई और भी फँमी-सी हो गयी और बडी कठिनाई से आवाज आयी—मै कहती हूँ, बहू, उसकी जवानी गारत हो जाएगी । उसकी लहद में कीडे पडेगे । तुम्ही लोग देखोगी कि वह कैमी मौत मरता है । अरे मुझ मरी को क्या मारता है । मुझ बेवा-बुढिया को क्या कलपाता है .

क्षण भर का समय लिए बिना ही अहमद मियाँ समझ गए कि बुढिया ही है और सुबह-सवेर आ धमकी है ।

जरा-सी भी आहट किए बिना अहमद मियाँ दरवाजे की ओर बढना छोड, आहिस्ते से वहाँ से सरके और फिर दबे पाँव अपने कमरे मे आकर बिस्तर पर लेट गये ।

बरामदे की बात-चीत वहाँ मद्धिम पड जाती है और ठीक से सुनाई नही देता । बाजू के कमरे मे रशीद की दुल्हन के चलने से लच्छे और घुँघरू वाले पाजेब को मिली-जुली आवाज़ सुनाई दी फिर ढीली चूडियों की खनक के साथ पीतल के गगरे मे ढके हुए परात के खीचने और पानी निकालने के बाद उमके सरका देने का स्वर आया ।

रशीद का ख्याल आते ही अहमद मियाँ मुस्कुराये । रशीद उनका इक-लौता बेटा सही, भले लाड़-प्यार मे पला हो, लेकिन वह उनकी आशा से भी अधिक योग्य और अच्छा निकला । इकलौते अक्सर लाड-प्यार में बिगड जाते है यह बात उनके मन मे भी और बापों की तरह बैठी हुई थी । इसी के प्रभाव में आकर उन्होने पहले कुछ वर्ष रशीद से बडी सख्ती से काम लिए । बाद मे उसकी जरूरत नही पडी और फिर तो अहमद मियाँ को भी कायल होना पडा कि सब बेटे एक तरह के नहीं होते ।

मैट्रिक पास करने के बाद कालेज की पढाई के लिए (क्योंकि वहाँ

कालेज नही था) दूसरे शहर जाने की जिद उसने अवश्य मचाई थी लेकिन उसे भी अहमद मियाँ ने चलने नही दिया। वह सिविल कोर्ट मे सवा सौ रुपयो के पेशकार थे। मँहगाई के इस जमाने मे उस छोटी तनख्वाह से किसी तरह घर चला रहे थे। रशीद को कालेज की पढाई के लिए शहर भेजना सत्तर-अस्सी रुपये माह का खर्च था सो वह किसी तरह भी मुमकिन नही हुआ और कुछ दिन रो-गाकर रशीद भी चुप हो गया।

अहमद मियाँ क्या स्वयं नही चाहते थे कि उनका बेटा पढ-लिखकर किसी अच्छे ओहदे की नौकरी पाए? लेकिन वह क्या करते। सारी जिन्दगी उन्होने नौकरी मे गुजार दी, बूढे हो रहे है—दो-एक बरस बाद रिटायर भी हो जाएगे लेकिन एक पैसा कभी आडे वक्त के लिए नही बचा पाए। जो आया, बराबर। सैकडो कमाए लेकिन सब खा-पी डाले।

यह बात पहिले नही खली थी—उस समय चुभी और अहमद मियाँ लगभग रो पडे थे जब बेटे की सगाई हो गई, शादी के लिए दो माह ही रह गए और उनके हाथ मे एक पाई न थी। ब्याह करना और घर बनाना क्या आसान बात है? अल्लाह ने वक्त पर इज्जत रख ली और सारा काम निबट गया यह तो ठीक है लेकिन रशीद के ब्याह के छह-साढे छह बरसों बाद भी आज आठ-नौ सौ का कर्ज वह उतार नही पाए। पूरा कर्ज ज्यो-का-त्यो धरा है। यद्यपि अब रशीद भी नौकरी करने लगा है लेकिन बचाव की कही कोई सूरत नही निकली। शायद जितनी आमदनी के जरिये बनते है उससे भी दुगने रास्ते खर्च के निकल आते है।

कर्ज के साथ ही रशीद के ब्याह और उसके साथ दहेज की याद आई। रशीद की दुल्हन बड़े घर की बेटी न थी। न अधिक पढी-लिखी और न अधिक खूबसूरत। वह एक औसत दर्जे की लडकी थी और अहमद मियाँ के ख्याल मे पूरी तरह उनके बेटे के योग्य भी नही थी। शादी के एक बरस तक तो कोई शिकायत सुनने मे न आई लेकिन बाद में रशीद उखडा-उखडा रहने लगा और अक्सर उनके कमरे से रशीद के चिल्लाने और गालियाँ बकने की आवाज़ आती। बहू मे रूप भले न हो लेकिन बहुत ही

सहनशील, शात और सजीदा थी और पहिले एक दो बरस भले अहमद मियाँ ने ज्यादा परवाह न की हो लेकिन बाद मे रशीद से बढकर उसे चाहने लगे।

पहिले बरस उन्हे क्यो असतोष था ? वह क्या जानते थे कि बेटी का बाप इतना कगाल भी हो सकता है ! माना कि अहमद मियाँ ने शादी के पहिले समधी से साफ-साफ कह दिया था कि उन्हे सिर्फ बहू चाहिये— रशीद के लिए एक दूल्हन और इसके अलावा किसी दहेज की वह परवाह नही करते लेकिन बेटी के बाप का भी तो कुछ फर्ज होता है न !

अहमद मियाँ की बैठक की तख्त मे शुरू से चटाइयाँ बिछती थी। रशीद की शादी से पहिले एक बार जब चटाइयाँ फट गई तो अहमद मियाँ ने उन्हे हटाते हुए अपनी बीवी से कहा था—अब तो इस तख्त पर नई चटाइयाँ नही डलवाऊँगा। रशीद की दुल्हन दहेज मे जो गालिचा लाएगी, वही इसमे सजेगा।

बैठक का वह तख्त आज भी नगा है। उसमे न गलीचा बिछा और न चटाइयाँ पड़ी। गाहे-ब-गाहे एक दो बार अहमद मियाँ की बीवी ने हँस कर ताने भी दिए—

—तुम्हारी बहू का गलीचा तो मुआ काश्मीर से नही चला। इस तख्त के नसीब मे क्या अब चटाइयाँ भी नही रही ? वह बात रशीद की दुल्हन के सामने भी एकाध बार हुई अत· अहमद मियाँ ने बडी जोर से झल्लाकर डाँट दिया—बिल्ली की नीयत छीछड़े पर ! तुम ही अपने साथ दहेज मे कितने कालीन-गलीचे लेकर आई थीं ?

उनकी बीवी ने बात टालना नही सीखा, इस चोट मे तिलमिलाकर बोली—लो और सुनो। तख्त पर मैं बैठती हूँ न ? उस पर की चटाइयाँ मैंने ही तो हटाई थी। मैंने ही तो कहा था कि रशीद की बहू दहेज में जो गलीचा लाएगी, वही तख्त मे बिछेगा।

गह अहमद मियाँ पर करारी चोट थी। दबी हुई दृष्टि से देखा उनकी बहू सूप में सिर झुकाए चावल बीन रही थी, दाँत पीसकर उन्होंने हाथ का

कप-सासर दीवार पर दे मारा और गुस्से मे बाहर निकल आये।

उसके एक-डेढ महीने बाद एक सुबह क्या देखते है कि उनके तख्त पर बडा ही खूबसूरत गालीचा बिछा है—एकदम नया, झकझक करता! उनकी बीवी ने मुस्कुरा कर व्यग से बताया कि बहू के मायके से आया है। वह अहमद मिलाँ के गाल पर तमाचा नही तो और क्या था? उसे तख्त से उठाकर, बहू के देखते तक आँगन मे फेंकते हुए, वह चिल्लाए—

—रशीद की माँ, बहू से कहो हम पर तरस न खाए। अभी तो इतने मोहताज हम लोग नही हुए।

बात तूल पकड गई। दो-तीन दिनो तक बहू के खाना न खाने की शिकायत मिलती रही। रशीद ने कुछ दिन उनसे ठीक से बात ही न की और घर का वातावरण काटने को दोडने लगा अत एक रात जब रशीद बाहर था, हाथ मे गालीचा लिए चोरो की तरह अहमद मियाँ बहू के कमरे तक गए और भीगी आवाज से बोले—

—बहू, तुम खाना क्यो नही खाती?

बहू ने जवाब न दिया बस हडबडाकर पल्लू सम्हालती हुई खडी हो गई और चाहे अहमद मियाँ ने जितने मरतबा प्रश्न दुहराया हो, बिना कुछ बोले जमीन की तरफ देखती रही। अहमद मियाँ कई पल तक खडे सोचते रहे फिर एकाएक भर्राई हुई आवाज से बोल—एक काम करो बहू, इस गालीचे का मेरे लिए कफन सी दो!

सुनकर उनकी बहू ने मुँह मे आँचल ठूँस लिया और रोने लगी। अहमद मियाँ भी रोए, खूब रोए फिर गालीचा वही रखकर नाक साफ करते हुए कमरा छोड आए। रोने से बहुत कुछ साफ हो जाता है। आँसू शायद सचमुच मन का मैल धो देते है . . .

अचानक अपने कमरे की ओर बढते किन्हो पावो की आहट सुनकर अहमद मियाँ ने दम साध लिया, आँखे बद कर ली और हाथ मोडकर बाई बाँह आँखो पर रख ली। जानते थे कि बीवी होगी। आकर उसने जगाने की कोशिश की। अहमद मियाँ के हाँ-हूँ करने के अलावा जागने के और

कोई आसार नही दिखाए तो झल्लाकर कहती हुई कमरा छोड गई—बुढिया दो घटो से बैठी मेरा माथा चाट रही है और तुम उठने का नाम नही लेते। देखती हूँ, आज दफ्तर भी नही जाना है!

बुढिया की बात आते ही अहमद मियाँ की जान आधी हो गई। बीवी पर एकाएक बडा क्रोध आया। शादी के सताइस बरसो मे कभी पल भर के लिए भी समझौता करना उनकी बीवी को न आया। जवानी के दिनो मे उनके सपनो के नाजुक-नर्म पख उसने तोडे थे और अब बात-बात पर उन पर हावी हो जाती है। क्या एक बुढिया को नही टाल सकती थी जबकि वह अच्छी तरह जानती है कि उससे मिलना एक-दो घटे बरबाद करना होता है? उन्हे क्रोध तो आया ही, मन ही मन पछताए भी कि व्यर्थ उन्होने सोने का बहाना करके अपनी बीवी को निकल जाने दिया। क्यो नही उठकर उन्होने उसे डाँट दिया कि किसी दिन यदि चोरी करके अहमद मियाँ आए तो सबसे पहिले घर वाले ही फँसा देगे।

धूप अब तेज हो गई थी और बरामदे मे बिखरा धूप का टुकड़ा और लम्बा होकर बीच के कमरे की चौखट को छू रहा था। और दिन होता और इतने दिन-चढे वह बिस्तर पर पडे होते तो अचानक हडबडाकर उठ बैठते और घर भर को सिर पर उठा लिया होता कि उन्हे इतनी देर तक क्यो सोने दिया गया, किसी ने जगाया क्यो नही? (भले वह जानते हों कि उनकी बीवी कई बार जगाने की कोशिश कर लौट गई है)

अहमद मियाँ की सारी तैयारी नौ बजे तक प्राय: हो जाती थी। अदालत भले ग्यारह से लगती हो लेकिन उन्हे तो दो घटे पूर्व ही पहुँचना होता है। पचीस तरह के काम है। तमाम सबधित केसेज निकालना, हर एक फ़ाइल पर नोट लिखना और ग्यारह से पहिले-पहल ही उस दिन की सभी फाइले जज साहब की मेज पर रख देना। नौकरी करते अहमद मियाँ को अठाइस बरस होने को आए, दो-एक बरस बाद रिटायर भी हो जाएँगे लेकिन आज तक किसी भी अफसर को यह मौका न दिया कि काम-काज के सिलसिले में एक लफ्ज भी कह सके। आगे-के-आगे वह सब कर दिया करते

हालाँकि इस कोशिश मे उनका पूरा दिन और कभी-कभी रात का भी अधिकाश समय आफिस को चला जाता था। सरकारी छुट्टियो के दिन उन्होने कभी छुट्टी नही मनाई और बीमारी के दिनो को छोडकर (खुदा का शुक्र है कि वह पिछले आठ बरसो से एक बार भी बीमार नही पडे) उन्होंने कभी लम्बी छुट्टी नही ली।

इस बात को लेकर उनकी पत्नी अक्सर कुढती और आए दिन झडप तक हो जाती। उसका कहना भी क्या गलत है ? नौकरी तो आखिर जीने के लिए ही लोग करते है न ? ऐसा तो कोई नही करता कि दिन-रात का अधिकाश समय बस आफिस मे ही गुजार रहे है और घर वाले मरे या जिये, इसकी परवाह ही न हो।

अहमद मियाँ भी बेचारे क्या करे ? नौकरी के आखिरी दिन है—फूँक-फूँककर कदम रखना ही पडता है। कही कुछ हो गया तो जिन्दगी भर के किए-कराए पर पानी न फिर जाएगा ? उनकी बीवी को क्या मालूम कि आखिरी दिनो की सरकारी नौकरी कैसी होती है !

एकाएक बीच के कमरे मे पावो की आहट मिली और अहमद मियाँ ने अपने को तैयार कर लिया कि बीवी के आते ही वह उस पर बरस पडेगे लेकिन लगातार पाँच मिनट तक प्रतीक्षा करते रहने पर भी उनके कमरे मे कोई नही आया। कमबख्त बुढिया भी उनकी जान को रोग की तरह लग गई है।

बुढिया पिछले ग्यारह बरसो से अपनी जायदाद का मुकदमा लड रही है ! अब उसे जायदाद का मोह क्यों रह गया है ? यह सब किसके लिए बटोर रखना चाहती है ? उसके बाल-बच्चे कोई नही। पन्द्रह-सोलह बरस से बेवा है। उसका पति था तो मामूली हेड-कान्स्टेबल ही लेकिन उसने जीते-जी बहुत कुछ जमा दिया था।

उसके मरने के बाद (चूँकि कोई बाल-बच्चे या नजदीक के रिश्तेदार न थे) उसने अपनी जाति के एक भलेमानुष के इकलौते बेटे को गोद मे लिया। वही एक दिन बुढिया के साथ दगा कर जाएगा, यह कौन जानता था ?

मकान के अलावा कोई दस-बारह एकड की जमीन थी। उसे उसके गोद लिये लडके और उसके परिवार वालो ने हथिया ली। जमीन शिक्मी मे दी जा रही है, इस धोखे मे उसे रख, बिक्रीनामे मे उन लोगो ने अँगूठा लगवा लिया। अब अगर वह ग्यारह बरसो से हर छोटी-बडी अदालत का दरवाजा खटखटाकर, जोर-जोर रोए कि उसे धोखा दिया गया, उसने ज़मीन नही बेची, उसने पैसे नही लिए, तो कौन विश्वास करेगा ?

घूम-फिरकर वह मुकदमा अहमद मियाँ की अदालत मे भी चला और साल भर बाद खारिज हो गया। हाई कोर्ट मे अपील की गई और आठ दिनो पहिले वहाँ से भी आर्डर आ गया। इस बीच बुढिया हर एक-दो दिनो की आड से अहमद मियाँ के घर आ भभकती और रो-रोकर वही किस्सा यूँ बार-बार सुनाती जैसे पेशकार न होकर वह जज हो और उन्हे किसी तरह अपनी सचाई का विश्वास दिला सकी तो अहमद मियाँ उसके ही हक मे फैसला कर देगे।

इसे तो रिश्वत ही कहा जाएगा न कि बुढिया जब भी आती अपने साथ कुछ-न-कुछ फल-फूल अवश्य ले आती और उनके नवासे गुड्डो को प्यार से पुकार-चुमकारकर उसकी मुट्ठियाँ या मुँह किसी-न-किसी मौसमी फल से भर देती।

कुछ दिन तो इस बात को वह टाल गए लेकिन बाद मे उन्होने अपनी बीवी के जरिये साफ मना करवा दिया। बुढिया थोडी देर आश्चर्य मे तकती रही फिर एकाएक बिलखकर रो पडी। अहमद विधर्मी ही सही लेकिन वह तो उसे अपना बेटा ही समझती है। उसे क्या इतना भी अधिकार नही कि अपनी ओर से बच्चो को कुछ लाकर दे सके ? उस बात का क्या जवाब था ?

किसी तरह अदालत के साथियों को यह बात मालूम हुई तो मारे तानों के अहमद मियाँ का हाल बुरा कर दिया। बुढिया है तो चालाक ! वकीलो, मुंशियो और अहमद मियाँ के पहिले वाले बाबू तक को उसने अजलि भर-भर रुपये दिए थे लेकिन एक अहमद ही बेचारे अल्लाह मियाँ की गाय

है जिन्हे चार-आठ आने के फलो मे बुढिया ने बहला लिया है।

उस समय तो वह बात उन्होने हँसकर टाल दी लेकिन बाद मे उन्हे लगा कि बात सच ही होगी। अरे, हराम की कमाई उन्हे खुद भी नही चाहिए। जब मिहनत के पैसे ही पूरे नही पडते तो रिश्वत के पैसो का क्या भरोसा ? लेकिन वह यह बात भूल ही नही पाते—अगर यह सच है कि अहमद के पहिले वाले बाबू भी बुढिया से बहुत कुछ डकार गए तो निश्चय ही बुढिया उन्हे बुद्धू समझकर बेवकूफ बना रही होगी।

उस दिन के बाद से जाने क्यो अपने आप ही उनका व्यवहार बुढिया के प्रति बदलने लगा और कई बार जब बुढिया उनसे मिलने घर पर आई तो रहकर भी उन्होने कहलवा दिया कि बाहर गए है।

जिस दिन हाईकोर्ट का आर्डर आया, जज साहब दौरे पर थे। लिफाफा खोलने के पहिले ही वह जान गए थे कि क्या फैसला आया होगा लेकिन उनसे बुढिया से स्वय कहते नही बना। व्यवहार बदल देने भर से आदमी क्या अपना दिल भी बदल सकता है ?

रात मे आकर बीवी से सारी बाते कही तो वह केवल मुँह खोल ताकती रह गई। बडी देर की चुप्पी के बाद उसने कहा—

—यह तो बहुत बुरा हुआ। यह खबर सुनकर बुढिया का जी पाना तक मुश्किल दीखता है। उसे बडी उम्मीद थी कि अपील मे वह जीत जायगी। जानते हो, जेवरो से लेकर खाने-पीने के लोटे-बर्तन तक उसने बेच डाले है। उससे यह बात कैसे कहोगे ?

अहमद मियाँ स्वय यही सोच रहे थे। 'कैसे कहोगे' वाले प्रश्न से पिंड छुडाने के लिए उन्होंने झल्लाकर कहा—समझ मे नही आता कि कब्र मे पाँव लटके हुए है। कोई आँसू बहाने वाला तक नही फिर भी बुढिया क्यो जायदाद के लिए मरी जा रही है।

उनकी बीवी को यह बात शायद कुछ अच्छी न लगी। जरा रुककर 'ऐसा न कहो' बोलने के अन्दाज मे उसने कहा—वह तो ठीक है लेकिन

जब तक जिन्दा है तब तक तो जीने-खाने के लिए कुछ चाहिए न ?

अकस्मात उनकी खाट से सटी हुई मेज पर रखी घडी जोर से झनझना उठी। अहमद मियाँ चौक से गए। फुर्ती से उठकर उन्होने अलार्म बन्द करने का बटन दबाया। जाने किस कमबख्त ने एलार्म भर दिया था! काँटो पर निगाह गई तो घबराकर उठ बैठे—साढे नौ! रोज तो नौ बजे वह दफतर पहुँच जाते हैं।

अपना कमरा, बीच का कमरा और बरामदा पार करते हुए अहमद मियाँ इतनी तेजी से आँगन मे पहुँचे कि बुढिया पलकभर मे अधिक उन्हे नही देख सकी।

उनकी बीवी नल के पास खडी दूध की पतीली धो रही थी। रशीद शायद नाश्ता करके निकल गया होगा। बावर्चीखाने मे उनकी बहू आटा छानती बैठी थी। खन-खन करते उसके हाथ आहट पाकर क्षण भर के लिए रुके। सिर का ढलका हुआ पल्लू उसने ठीक किया और जरा-सा बरामदे की ओर देखकर फिर अपने काम मे लग गई। बुढिया अकेली ऊँघती-सी बैठी थी। सबको अपने-अपने काम मे लगे देखकर उन्होंने अनुमान लगाया कि बात करने को शायद कुछ बचा नही था।

लेकिन अभी बाथ-रूम तक भी नही पहुँचे थे कि दहलीज के पास से बुढिया के पुकारने की आवाज मिली—अहमद बेटा! अहमद मियाँ इस आवाज को जानते थे, इसी का डर भी था। पूरी तरह लौट भी नहीं पाए थे कि आँगन के कोने में गुड्डो पर निगाह पडी। दो केले उसके हाथ मे थे और तीसरा मुँह मे भरा हुआ था.. अहमद तो बिचारे अल्लाह मियाँ की गाय है जिन्हें बुढिया ने चार-आठ आने के फलों मे बहला लिया है!..

लपककर अहमद मियां गुड्डो के पास पहुँचे, उसके हाथ मे केले छीन कर आहाते की दीवार के उस पार फेंक दिया और गुड्डो के केले से ठुँसे गाल पर खीचकर तमाचा जडकर चिल्लाए—

—एक तो अभी बुखार मे छूटा है। सर्दी और खाँसी मे दम नही ले पा रहा है। इतनी सुबह-सुबह केले खाकर मरेगा क्या ?

गुड्डो इस आकस्मिक छीना-झपटी और मार से पल भर के लिए स्तभित रह गया। एक पलक बुढिया और अहमद मियाँ की ओर डाल जोर से चिल्लाता हुआ वह अपनी दादी की ओर भागा।

नल के नीचे के पत्थर पर बर्तन पटककर उनकी बीवी ने गुड्डो को अपनी बाहो मे भर लिया। अहमद मियाँ का मोटा खुरदुरा हाथ और चार-पाँच साल के गुड्डो के मासूम गाल! जोर-जोर की हिचकियाँ लेते बच्चे का चेहरा पलट और उँगलियो के निशान देखकर उनकी बीवी ने अहमद मियाँ को ऐसे घूरा कि वह नजर तक न मिला सके। गुड्डो के गाल पर हाथ फेरती उनकी बीवी ने भर्राई हुई आवाज से कहा—ऐसा ही है तो मुझे मार लो, इस मासूम पर क्या तान तोडते हो?—फिर जरा रुककर बोली—देखो तो, कितने जोर का तमाचा मारा है! मै कहती हूँ जो हाथ इस बेजुबान पर उठा है, खुदा करे वह हाथ ही

उनकी बीवी को आवाज ने साथ छोड दिया और आँसू की एक मोटी लकीर आहिस्ते से फिसलकर उनके निचले होठ मे ठहर गई।

तभी अहमद मियाँ की बहू सिर-पल्लू से धीमे कदम उठाती बिल्कुल निर्विकार भाव से निकली और गुड्डो को उसकी दादी की गोद से छुडा, अपनी गोद मे ले, चुपचाप भीतर की ओर बढ गई।

अपराधी की सी दृष्टि से अहमद मियाँ ने बहू को ओर देखा। गुड्डो के डरकर गर्दन मे लिपट जाने से खिसक गए सिर के आँचल को ठीक करने और अपना नगा सिर छुपाने के प्रयास मे उसने अपने डग तेज कर दिए। उनकी बहू ने एक शब्द नही कहा। उनकी ओर एक बार भी नही देखा . एक बार भी नही।

सहसा जाने उन्हे क्या हुआ कि एकाएक बुढिया की ओर बढकर उसे डाँटते हुए वह चिल्लाए—

—तुम्हारी जमीन-जायदाद गई तो क्या हम लोगो को जान खाओगो? उनके पास क्यो नही जातीं जिन्हे सैकडो रुपये खिलाए है!

'अहमद मियाँ जब नाराज होकर चिल्लाते है चेहरा लाल हो जाता है और ठीक से बोल नही सकते—लडखडाने लगते है' कहकर रोशनी की तरह तेजी से वह बाथरूम मे घुस गए ।

पर भीतर आकर उन्हे लगा जैसे जिस्म की तमाम नसो मे खून जम गया है और वह पत्थर हो गए है । बुढिया का जर्जर चेहरा सिनेमा के परदे पर क्लोज-अप की तरह उनकी आँखो के आगे उभर आया । किसी का रोना-कलपना उनसे नही देखा जाता । कडे बोल बोलना उन्हे कभी नही आया लेकिन कभी-कभी उनके भीतर क्या समा जाता है ?

बुढिया जरा ऊँचा सुनती है । उनकी बाते क्या वास्तव मे उसके कानो पहुँच गई ?

बाथरूम की ईंटे कई जगह से निकल गयी है । उस निकली हुई ईंट की पोली जगह के उनकी आँखो ने देखा कि अपनी जगह से हटकर बुढिया आँगन मे निकल आयी और बिना किसी से कुछ कहे, चुपचाप बाहर के दरवाजे की ओर बढने लगी । उनकी पत्नी शायद वहाँ नही थी ।

अहमद मियाँ बुढिया के लौटते चेहरे की थकी और निराश सिलवटों मे सभवत प्रतिक्रिया खोज रहे थे । उनकी अम्मी आज जिन्दा होती तो उनकी भी शायद इतनी ही उम्र होती । शरीर भी शायद इतना ही थक गया होता—जर्जर और निढाल !

सहसा उन्हें लगा कि उनके बहुत भीतर से कोई उन्हें बरबस ढकेल रहा है, धक्का दिए जा रहा है और अपने को न सम्हाल पाकर वह पल-भर मे ही बाथ रूम से आँगन मे निकल आएँगे ।

अचानक लगभग दौड़ती हुई-सी उनकी बहू दरवाजे के पास आयी, गर्दन मे लिपटे गुड्डो को उतारा और झपटकर, आधे आँगन तक जा चुकी बुढिया के सामने पहुँच, उसे घेरती हुई मीठे स्वर मे बोली—माँ, तुमने सुन लिया न —तुम्हे दफ्तर मे बुलाया है ।

उनकी बहू जब चूल्हे के सामने बैठी दाल घोटती है तो तेजी से घूमती हुई मथनी पतीली मे कुछ ऐसी ही हलचल पैदा कर देती है—छर्रररर....

छर छर्र्र्र् छर—पिसाव, कुछ ऐसा ही पिसाव। गहरे कुएँ के पानी मे अचानक बाल्टी डुबो देने का स्वर रात के एकाकी-पन मे कैसी अजीब-सी अनुभूति भर देता—खाली-खाली और उदास।

एकाएक अपने ऊपरी होठ के अगले भाग मे खारेपन का स्वाद पाकर अहमद मियाँ चोके और अनायास ही लरजने लगे अपने निचले होठ को गहरे दाँतो से काट लिया—

—या अल्लाह, उनकी सीधी-सादी बहू भी झूठ बोलती है।



धतूरे का फूल

दोमक-चरी और घिसी पट्टियों वाले गेट से लटकते नेम प्लेट पर आँख पड़ते ही देवेन्द्र पूरी तरह आश्वस्त हो गया, फिर भी उसने रंग-उड़े बोर्ड पर एक बार निगाह डाली। पते के अनुसार यही मकान हो सकता था। नेम-प्लेट पर सक्सेना सा० का पूरा नाम और डिग्रियाँ लिखी हुई थीं।

देवेन्द्र को अचानक याद आया कि इस नेम-प्लेट से तो वह बरसों से परिचित है। वही लकड़ी का पुराना बोर्ड जिसके काले रंग की जमीन पर सफेद अक्षरों में—बी० पी० सक्सेना—लिखा हुआ था। आज उसमें अंतर केवल इतना था कि बीते आठ बरसों की धूप और बारिश खाकर बोर्ड बीच से फलका हुआ था और अक्षर करीब-करीब मिट-से गये थे।

आठ बरसों की दूरी लाँघकर पल भर में देवेन्द्र की आँखों के सामने उसके अपने नगर और स्कूल के आहाते वाला हेडमास्टर का बंगला घूम गया जिसमें सक्सेना सा० छह साल रहे थे। पहिले उस बंगले में लान नहीं थी बगीचे के नाम पर लाल-लाल मिट्टी से हमेशा धूल उड़ती

और चलने से पाँवो मे नोकीले ककर चुभा करते थे। सक्सेना मा० को गार्डिनिग का बेहद शौक था। अक्सर, सरकारी तौर पर घर के लिए उन्हे मिले चपरासियो के अलावा भी स्कूल के दो-तीन और चपरासियो को वह बगीचे मे लगाए रखते थे जिसकी वजह से स्कूल के मास्टरो और बाबुओ मे बडा असतोष था और वह अखबारो तक मे बदनाम हो गये थे।

बगले की पूरी हुलिया बदल देने के बावजूद भी गेट पर लगा नेम-प्लेट उन्होने नही बदला। इस बात को लेकर प्राय टीचर्स-रूम मे या रीसेज मे लडको के बीच हँसी उडा करती पर सक्सेना मा० ने उन बातो पर कभी ध्यान न देकर सबको अनसुना कर दिया। पहिले-पहिल वह बात उनकी लापरवाही समझकर टाल दी जाती थी लेकिन जब एक दिन साइस टीचर भटनागर (जो अवकाश के वक्त भी सक्सेना सा० को नही छोडते थे) ने बडी गभीरतापूर्वक नेम-प्लेट बदलने या किसी पेटर से नये ढग से लिखवा लेने की बात पर जिद करना शुरू कर दिया तो सक्सेना सा० ने हँसकर अजीब लहजे मे कहा था—भई भटनागर, आज नेम-प्लेट बदल दूँ तो कल शायद कहोगे कि मेरा सिर भी अब पुराना होकर घिसने लगा है!

इस बात के बाद बडी खोद-खाद की गयी और पन्द्रह दिनो के अन्दर ही तिवारी ने (जो टीचर्स रूम मे गहरे-से-गहरे रहस्य खोल लेने की प्रतिभा के लिए विख्यात था) नेम-प्लेट का राज लोगो को बतलाया।

बात इतनी बेमानी थी कि सब लोगो ने हँसकर उडा दी। कहा यह जाता था कि जिस दिन उन्होने नेम प्लेट बनवाया था उसी दिन वह दूसरे सीनियर टीचर्स के होते हुए भी हेडमास्टर बन गये थे और जब उन्होने नेम-प्लेट को मिटवाकर नये पेटर से रगवाया था तो उनकी पत्नी पागल हो गयी।

जब वहाँ से तबादले का आर्डर सक्सेना सा० को मिला तो कोई-न-कोई बहाना निकाल कर किसी तरह दो-तीन महीने और खींच ले गये। जिस दिन चार्ज लेना-देना हुआ सक्सेना सा० लगातार चुप रहे और बिल्कुल ही निर्विकार भाव से हस्ताक्षर पर हस्ताक्षर करते गये।

फेयरवेल मे सभी ने बडा उत्साह दिखाया। खूब बडी और अच्छी पार्टी दी गयी और प्रेस के लोग तक अलग से आमंत्रित किए गये। अधिकाश मास्टर अपनी-अपनी ओर से एक-एक गजरा बनवा लाए थे। सक्सेना सा० की ली गयी तस्वीरो मे उनकी गजरो मे लदी तस्वीर शायद आज भी देवेन्द्र के पास होगी।

लोगो ने उठकर बारी-बारी से सक्सेना सा० के व्यक्तित्व, उनकी सरलता और सहृदयता पर भाषण दिये। प्रत्येक ने गभीर तथा भारी आवाज मे यही बात दुहरायी कि सक्सेना सा० को खोकर उन लोगो ने बहुत कुछ गवा दिया और वह खोना ऐसा था जिसकी पूर्ति नही हो सकती।

जब तक लोग उनके विषय मे बोलते रहे सक्सेना सा० मेज के एक कोने पर कोहनी टिकाए और गर्दन डाले हुए बस एक तरफ और एक जगह ही ताकते रहे। सब लोगो के बाद जब वह धन्यवाद देने तथा अपनी ओर से कुछ कहने के लिए उठे तो लगातार पाँच मिनटो की कोशिश के बाद भी एक शब्द उनके होठों से नही फूटा। बस चुपचाप खडे हुए जमीन मे अपने पाँव और मेज पर अपने हाथ बदलते रहे। भीतर से कुछ उफनता, गले मे आकर अटक जाता और सक्सेना सा० कुछ रोकने की कोशिश मे बार-बार और जल्दी-जल्दी अपनी बरौनियाँ डालने लगते। यह स्थिति कोई पाँच मिनट चली और अत मे सक्सेना सा० छलछलाकर रोने लगे। उसके बाद, बस दोनो हाथ जोडकर उन्होने अपनी आँखो पर रूमाल रखा और मेज़ पर कोहनियाँ टेकते हुए चुपचाप बैठ गये।

दूसरे दिन सुबह जब रिक्शो मे सामान लद गया, टिकिट बन गये, उनकी पत्नी को लिए बेटी पुष्पा अहाते के बाहर निकल आयी और उनका तीन वर्षीय बेटा विनय चलने के लिए आकर उनसे लगकर खड़ा हो गया तो उसकी उँगली पकड़ सक्सेना सा० भी गेट के बहार आए। सब लोगो से अंतिम बार मिलकर, वह बगले की ओर बडी ममता भरी आँखो से देखते रहे फिर गेट के पास आकर नेम-प्लेट निकाल लिया और रिक्शे मे बैठकर सबकी ओर देखते हुए फिर हाथ जोड दिए।

वही नेम-प्लेट आज यहाँ भी लगा था लेकिन क्वार्टर के सामने वाले प्लाट मे न तो हरियाली थी, न कोई पेड-पौधे और न ही कोई खुरपी लिए हुए व्यस्त चपरासी कि वह किसी भी आने वाले को देख, बाग का काम छोड दौडकर गेट खोल दे और आदरपूर्वक बिठाए।

स्वय गेट खोलकर देवेन्द्र भीतर आ गया लेकिन बरामदे तक आने पर भी किसी की आहट नही मिली। सम्हालकर आहिस्ता और मीठे स्वर मे देवेन्द्र ने कई आवाजे लगायी। बडी देर तक दरवाजे के सामने का परदा हिलता रहा फिर एकाएक कोई लडकी आयी, दरवाजा खोला और परदे के बाहर लम्हे-भर के लिए झाँककर तेजी से भीतर हो गई।

देवेन्द्र ने अनुमान लगाया कि वही पुष्पा होगी। सहमते हुए उसने कहा—सक्सेना सा० है क्या ?

कुछ देर रुककर जवाब मिला—उनकी तबीयत ठीक नही।

—वह मैं जानता हूँ, देवेन्द्र ने कहा—उनसे मिलने ही आया हूँ।

—लेकिन पिताजी किसी से नही मिलते अ आपको उनसे क्या काम है ?

देवेन्द्र को जवाब देते नही बना, जरा ठहरकर बहुत विनम्र स्वर मे उसने कहा—उनसे सिर्फ मिलना है। आठ साल बाद यहाँ आया हूँ आज भी उनसे मिले बिना चला जाऊँ तो दुख होगा। आप उन्हे मेरा नाम बताइये—कहिए बाहर से कोई देवेन्द्र आए है।

कुछ देर परदा उँगलियो की पकड से थमा रहा, उसके और चौखट की खाली जगह पर, क्षण भर के लिए धुँधला-धुँधला-सा एक चेहरा आया और उँगलियो की पकड छूट जाने के बाद परदे का कँपना. , कँपना..

बरामदे मे एक बेंच पडी थी और उसी के पास तेल के धब्बो वाली एक आराम कुर्सी। परदे के पीछे से जब और आवाज नही आयी तो देवेन्द्र थोडा आश्वस्त होकर बेंच पर बैठ गया।

सामने के मकान के पास एक बरसो पुराना लम्बा और गठानो वाला खजूर का पेड अपनी काँटेदार डगालियो समेत सिर उठाए खडा था। धीरे-

धीरे वह सूखने लगा है और उसकी कई टहनियाँ सूखकर पीड पर झुक आयी है । जब हवा तेज होती होगी तो उसके बेतरह डोलने से आसपास के मकान वाले क्या डर नही जाते होगे ?

लगभग और पन्द्रह मिनट बाद एक पुरानी धोती की तहमत लपेटे और चादर ओढे सक्सेना सा० लडखडाते हुए-से निकले । देवेन्द्र हडबडाकर उठा, आगे बढा और सक्सेना सा० के चरण छू लिए ।

नही, सक्सेना सा० तो बिल्कुल पहिचान मे नही आते—देवेन्द्र बस देखता रह गया—पहिले का आधा स्वास्थ्य भी उनका नही रह गया, बाल करीब-करीब सब पक गए और सामने के तीन दात जा चुके थे ।

देवेन्द्र ने उनकी आँखो मे देखते हुए ललककर कर कहा—आपने मुझे पहिचाना ? मै देवेन्द्र हूँ—अपने स्कूल मे मै आपका सबसे प्रय विद्यार्थी था ।

सक्सेना सा० ने जरा गौर से देवेन्द्र को देखा फिर सिर हिलाते हुए आरामकुर्सी पर बैठ गए । उनकी भाव भगिमा से लगा कि एक तो देवेन्द्र को उन्होने नही पहिचाना, दूसरे पहिचान भी लेते तो प्रसन्न नही होते । थोड़ी देर चुपचाप बैठकर देवेन्द्र उन चरणो को जोहता रहा जब वह उनके विषय मे पूछेंगे कि वह यहा कैसे आया है, क्या करने लगा है और कितन दिन रुक रहा है पर सक्सेना सा० कुछ बोले नही, जैसे बरबस बिठाल दिए गए हो ऐसे ताकते रहे । देवेन्द्र ने अपनी ओर से कहा—

—मै यहाँ एक इटरव्यू मे आया था, सोचा आपके दर्शन करता चलूँ ।

एक बोझिल-बोझिल-सी भावविहीन दृष्टि । न कोई प्रश्न, न उत्तर और न ही कोई उत्सुकता ।

देवेन्द्र बोला—आप इतने बीमार है, यह मै नही जानता था । अबकी बार बड़े कड़ुवे ढग से सक्सेना सा० हँसे—बुढापा खुद सौ बीमारियो की एक बीमारी है । तुम इस उम्र को क्या जानो आदमी जीता है लेकिन उसमे और मुरदे मे कोई अन्तर नही होता ।

ज़रा रुककर सक्सेना सा० ने एक साँस ली और अपना सिर आराम-

कुर्सी पर टेक दिया।

—मेरा शरीर अब नही चलता। दो महीनो की छुट्टी लेकर बिस्तर पर पडा हूँ। हालाँकि मेरी इतनी सकत नही थी, फिर भी इलाज के लिए मै बम्बई और कलकत्ता भी हो आया हूँ। लेकिन कोई फायदा नही होता। अब होगा भी नही। ब्लड प्रेशर के रोगियो का क्या है ?—उनकी हर साँस नयी जिन्दगी होती है। मै भी हर दिन को नयी सुबह मानकर जीता हूँ लेकिन यह कब तक चलेगा ? लोग कहते है कि अब मुझे छुट्टी के बाद रिटायर कर दिया जायगा। मै भी कहता हूँ करने दो। हर आदमी यदि अपना भाग्य लेकर आता है तो पुष्पा भी लेकर आयी होगी।

देवेन्द्र को लगा कि सक्सेना सा० की आवाज भारी होने लगी है इसलिए वह बात को बरबस तोडकर, अपनी बहुत थोडी-थोडी चमकती पलके सामने के खजूर पर अटकाकर चुप हो गये।

धीरे-धीरे करके आज वह कितने भाग्यवादी हो गए थे। यही सक्सेना सा० पहिले भाग्यवादियो को कमजोर बुजदिल कहकर मजाक उडाते और क्लास मे सबो से हमेशा तदबीर पर जोर देने की बात किया करते थे। अक्सर वह बात-बात पर शिकायत किया करते कि नये जमाने मे सबके सब पुरुषत्वहीन लोग पैदा होते जा रहे है और सही मानी मे आदमी कहलाए जाने वाले लोगो का धीरे-धीरे करके लोप होता जा रहा है। ऐसे अवसर पर प्राय वह एक शेर दुहराते—

गुल गए, गुलशन गए
जग मे धतूरे रह गए।

नये-पुराने का झगडा युगो का है, उसमे पडना व्यर्थ है लेकिन सक्सेना सा० किसे गुल और किसे धतूरा कहते है, यह देवेन्द्र तब भी नही जानता था, आज भी नही जानता।

सहसा दरवाजे का परदा सरकाकर, दोनो हाथो मे ट्रे सम्हाले हुए पुष्पा आयी। सक्सेना सा० की पीठ दरवाजे की ओर थी, वह पुष्पा को देख भी न पाए थे लेकिन आहट सुनकर बोले—यह पुष्पा है !

परिचय की बात ऐसी तो नही होती । देवेन्द्र ने साहस करके पुष्पा की ओर देखा और हाथ जोड दिए लेकिन पुष्पा देख नही पायी तब वह बेच पर ट्रे रखे, केटली की चाय प्याले मे ढालने मे लगी थी । देवेन्द्र ने जरा और गहरी आखो से देखा—कुछ नही, एक बाईस बरसो का शरीर वाली लडकी और बस । मामूली कद और मामूली नक्श मे जरा गोरी और बारिश-भीगी-सी, पीडा और घुटन की परिधि मे घिरी-घिराई, अपने कटे डैनो को तोलती-सी, उडने-उडने को आकुल और एक बहुत छोटे-मे दायरे मे मण्डराती हुई लडकी जिसके सॉवले, रूखे-भूरे और अनसजे-सँवरे बाल इतनी बेपरवाही से बधे है कि एक के बदले कई छोटी और आडी तिरछी माँगे निकल आयी है । कान के पास की निहायत ही नर्म-नर्म रेशो वाले बालो की कलियॉ नीचे आधे गालो तक झुक आयी है लेकिन उसकी नन्ही लटे भी पीछे जूडे के बधाव मे भिच गयी है . चाय की भाप मे ताजा नहाए जिस्म की गध मिलकर देवेन्द्र को अचानक घेर रही है.. घेर रही है .।

भाप के धुँए-जैसे झिलमिले परदे से एकाएक उभरकर जो देवेन्द्र के आगे खडा हो जाता है, उसे वह अच्छी तरह पहिचानता है—यह तो सक्सेना सा० का आँगन है—दरअसल बगीचे के बाजू वाला खाली हिस्सा जहाँ बेरो से लदा हुआ एक पेड खडा है । छुट्टी की दोपहर मे सक्सेना सा० अपने कमरे मे बन्द कुछ लिखते-पढते रहते हैं और सामने के बगीचे मे भी कोई नही होता है । ग्यारह वर्ष पहिले देवेन्द्र कैसा रहा होगा ?

स्कूल के दो-तीन शरारती लडकों के साथ देवेन्द्र भी आहाते की दीवार फॉद आया है । एक साथी बेर के पेड पर चढकर लदी हुई टहनियो को झकझोर रहा है । कच्चे, पक्के, पीलाहट लपेटे हुए और गदराये बेर टप-टप टपक रहे हैं । देवेन्द्र सूखे पत्तो पर आहिस्ता-आहिस्ता कदम धरते हुए सब समेट लेना चाहता है । दरख्त से थोडी ही दूर पर एक खिड़की खुली है लेकिन देवेन्द्र नही डरता ! उसे विश्वास है कि वह सक्सेना सा० का कमरा नहीं हो सकता । वहाँ अगर पुष्पा हुई तो उससे क्या । लड़कियों से

भी भला कोई डरता है ?

अचानक बगले के भीतर वाले आहाते मे नल खोलने पर उसकी मोटी और तेज धार के पत्थर से टकरा-टकरा कर बिछलने की आवाज आयी और फिर भीतर के आँगन से कोई दौडकर सभवत सक्सेना सा० के कमरे तक गया। एक घबराई हुई आवाज है, जिसे देवेन्द्र नही पहिचानता—साहब, बाई, ने कपडे-अपडे फिर फेक दिए और नल के पास बैठी बर्तन पटक रही है .

—कपडे फेक दिए ?—साली, क्या नगी बैठी है ?

सक्सेना सा० को ऐसे स्वर मे बोलते और ऐसी गालियाँ बकते देवेन्द्र ने पहिले कभी नही सुना। उनके इस प्रश्न का उतर सभवत. मौन रहा हो क्योकि दूसरे ही क्षण दरवाजे के पल्लो को तेजी से ढकेलने की भट्ट भन्न की आवाज के साथ तेज और भारी कदमो की आहट नजदीक, और नजदीक, सरक आती सी लगती है।

आवाज सक्सेना सा० की है—पुष्पा! अरे, पुष्पा कहाँ है ?

पहिली बार देवेन्द्र देखता है कि पुष्पा तो उस खिडकी के पास बडी देर से खडी उन लोगो को देख रही है। उस चीख-पुकार या हल्ले का उसके चेहरे पर कोई प्रभाव नही।

थोडी ही देर मे सक्सेना सा० की आवाज पुष्पा के कमरे मे आ जाती है—। वह कैसी आवाज है, यह देवेन्द्र नही समझता, थकी हुई, हताश, विवश और रुआँसी-सी—

—पुष्पा, तेरी माँ कपडे फेक-फाँककर बैठी है, उसे जाकर कफन पहिना या मुझे जहर दे दे

उनकी पत्नी जब कपडे फेकती है तो नौकर को लाज आती है, सक्सेना सा० को लाज आती है और पुष्पा को लाज आती है! सबको एक-दूसरे से लाज आती है। आहाते मे खुले नल की मोटी धार नगे पत्थर पर पछाडें खा रही है—

घर घर ...घर घर ...छर्र र् र् र् र्!

चाय का एक-एक प्याला बढ़ाकर पुष्पा गयी नही, वही बेच के पास खडी हो गयी। सक्सेना सा० जिस तरह चुप-चुप बैठे हुए थे उससे देवेन्द्र को लग रहा था कि उसे अधिक देर नही बैठना है, बस चाय पीकर वह चल देगा। बार-बार साहस करके भी वह पूछ नही पाया कि उनकी पत्नी अब कैसी है। सक्सेना सा० को ब्लड-प्रेशर है और पिछली बार जब वह बीमार पडे थे तो डाक्टरो ने मना किया था कि शराब उन्हे बिल्कुल छोड देनी चाहिए। सभवत इसका मोह उन्हे पुष्पा से भी अधिक है। पुष्पा को तो देवेन्द्र देख रहा है, उसके विषय मे क्या पूछेगा ? बचाने के नाम पर उन्होने आज बस अपने बीमार शरीर को ही किसी तरह बचाए रखा है।

देवेन्द्र ने पूछा—विनय कहाँ है ? दिखाई नही देता।

—उसे मैंने ब्रदर के पास भेज दिया है। वहाँ रहेगा तो कुछ पढ-लिख लेगा। यहाँ तो बस....

कहते-कहते सक्सेना सा० जरा रुके और पुष्पा की ओर देखकर रूखे और आदेश देने के स्वर मे चिडचिडाकर कहा—

—तुम यहाँ क्यो खडी हो, भीतर जाओ।'

दीवार मे पीठ सटाए खडी पुष्पा अपमानित-सी सक्सेना सा० को घूरने लगी फिर देवेन्द्र को छिछलती आँखो से देखती हुई बहुत आहिस्ते से लौटी और परदे के भीतर हो गयी।

पहिले सक्सेना सा० इस मामले मे बडे सख्त थे। चाहकर भी पुष्पा को उन्होने अधिक शिक्षा नही दिलवाई और आठवी के बाद स्कूल से उसका नाम हटवा लिया। उसे कभी इतनी छूट नही थी कि वह बिला वजह बरामदे या खिडकी पर खडी रहे या किसी बाहर के आदमी से आमने-सामने होकर बातें कर सके।

अब इतना तमाम साहस पुष्पा कहाँ से बटोर लायी है ?

टूटी हुई बात जोडते हुए सक्सेना सा० ने कहा—यहाँ विनय क्या देखेगा ?—मुझे शराब पीते, पुष्पा को दिन-रात कुढते और रातें और अपनी माँ को कपडे फेंककर आँगन मे चिल्ला-चिल्लाकर गालियाँ बकते....

शायद सक्सेना सा० और कहना चाहते थे, और कुछ कहते पर अचानक ऐसे चुप हो गए जैसे बिल्कुल थक गये हो और आगे उनसे बोला नही जाएगा।

बडी देर तक दोनो चुप रहे। सक्सेना सा० ने टूटे हुए स्वर मे एक बात भर कही—मै बीमार और कमजोर हो गया हूँ इसलिए पुष्पा भी अब मेरी बात टाल जाती है। मुझे कुछ नही समझती।

उनकी वह बात ऐसी कही गयी जैसे देवेन्द्र से न कही जाकर अपने आप से कही गयी हो। महज शब्दो को किसी तरह होठो से अलगकर फेक देने-जैसी निमर्मता।

अचानक आरामकुर्सी से अपना सिर जरा-सा उठाकर उन्होने पूछा—

—तुम कायस्थ हो क्या?

उस आकस्मिक प्रश्न का अर्थ देवेन्द्र को भीतर-बाहर से झिझोड गया। उसका क्या जवाब हो सकता है? उससे तो सच-झूठ कुछ भी नही बोला जाएगा। जरा ठहरकर जवाब के लिए देवेन्द्र ने सक्सेना सा० पर सहमी-सहमी दृष्टि डाली। सिर उन्होने फिर से आरामकुर्सी पर टिका दिया था और पैरो को फेलाकर, जरा और इत्मीनान से, निढाल होकर उन्होने ऐसे आँखे मूँद ली थी जैसे केवल एक प्रश्न करके ही किसी कर्तव्य से अपने को हल्का कर लिया हो।

अकस्मात भीतर से किवाडो को हथेलियो से पीटने और भडभडाने की आवाज आयी फिर भद-भद दौडने, चीखने, रोने और गालियाँ बकने की

जैसे हडबडाकर सक्सेना सा० उठे और देवेन्द्र की उपस्थिति बिल्कुल भूलकर दरवाजे तक चले गए। पर वहाँ शायद कुछ याद आया, रुककर पलटे, देवेन्द्र की ओर देखा और ऊबे हुए स्वर मे बोलें—

—अब तुम जाओ भाई, अपना काम करो।

सक्सेना सा० के भीतर चले जाने के बाद भी देवेन्द्र से कुछ देर उठा नहीं गया। जितनी देर बैठा रहा मन मे यही बुनता-उधेडता रहा कि अपने नगर लौटने पर लोगो मे सक्सेना सा० की भेंट की बात वह किस तरह

कहेगा ।

वहाँ से उठते-उठते ही मौसम बदल जाने की बात अजीब थी । आध-पौन घटा पहिले जब देवेन्द्र आया था तो धूप के पख हालाँकि पीले-सुनहरे पडने लगे थे । लेकिन आकाश मे गीले बादलो का नाम न था । धूप के घुलते ही एक ओर से बादल झुकने लगे और थोडी ही देर मे हवा नम होकर आहाते की नगी जमीन तक सरक आयी । सामने का गठानो वाला खजूर तेज हवा के झोको मे पीड समेत डोल रहा था । सूखी हुई टहनियाँ पीड के झूमने से इधर-उधर टकराती है—

कट कट . कट कट

गेट के पास पहुँचकर देवेन्द्र रुका । सक्सेना मा० ने भीतर के हलचल को जाते ही थाम लिया था । उस मकान को अतिम बार देखते-देखते देवेन्द्र चौक गया । सामने वाली खिडकी खुली थी और उसकी लोहे की सलाखो को अपनी दोनो मुट्ठियो मे मजबूती से कसे हुए पुष्पा उस पर पेशानी और चेहरा टिकाए उसकी ओर एकटक देख रही थी ।

हवा मे कितनी नमी थी कि देवेन्द्र को सर्दी-सी लगने लगी और उसके जिस्म का रोया-रोया सजग होकर कँप गया । ग्यारह वर्ष पहिले भी पुष्पा ने इसी तरह देखा था । देवेन्द्र वहाँ बडी देर तक खडा रहा । जब सामने वाले खजूर के कट-कट का स्वर और तेज हो गया तो अचानक उसके मन मे एक कोफ्त हुई और वह अपने को कोसने लगा कि उसने खजूरे का पौधा आज तक क्यो नही देखा—

जाने उसका फूल कैसा होता होगा ।

चूल्हे का चाँद

रोशनी का एक टुकडा सरकता-सरकता टेढी हो गई मोटी लकडी के उभरे हुए कूबड पर थमा—सिरा जला हुआ था और राख की चितकवरी और हल्की कोटिंग मे बुझे हुए कोयले चमक रहे थे। अगीठी शायद पिछली रात जली होगी, अभी ठण्डी थी। उसी रोशनी के दायरे मे—चूल्हे की शकल मे—तीन जली हुई ईंटे आयी। उसकी गोद वाली राख ज्यादा बासी थी और लकडियो के नाम पर दो-तीन छोटे-छोटे टुकडे सने पडे थे। उसी के पास माटी की एक खुली हाँडी एक ओर झुक गई थी (उसका रूठकर मुँह फेर लेना कितना दुखदायी था!) ऊपर लगातार कई बरसो से धुँआ लील-लीलकर काली पड गयी बत्ती से लटकते हुए छीके की रस्सियाँ एकदम स्याह थी उसमे अल्मूनियम की पुरानी और गर्दन-उडी पतीली अटकी थी। अनुमान लगाया—वहा भी कुछ नही होगा।

टार्च की स्विच के स्वर के साथ ही रोशनी का दायरा झुककर अँधेरे मे मिल गया और उसके साथ ही बिहारी की करुण और चीर देने

वाली आवाज चन्द्रनाथ के बाहर-भीतर अपनी अनुगूँज-सी छोडने लगी। जिधर से स्वर आया था, चन्द्रनाथ ने उधर टार्च की रोशनी फेकी और पुकारा—बिहारी।

बेत और बॉस के बने दो-तीन मोढो के पास—सूराख पड-पटकर एक से आधे हो गए टाट और एक पुरानी मैली साडी (जो बिछौना और ओढना शायद दोनो थी) पर बिहारी हाथ-पांव पटकता पडा था। निकट आकर चन्द्रनाथ ने बिहारी को देखने के लिए उसके पास की जमीन मे टार्च मारी लेकिन वहाँ की उछली रोशनी ने बिहारी के चेहरे की जो रेखाएँ खीची, उसे अधिक देर तक देखने का साहस चन्द्रनाथ को नही हुआ। रोशनी बुझाकर बोला—आज एक भी मोढा नही बिका ?

बिहारी शायद अँधेरे मे लोट रहा था। कमरे मे सीलन की एक फफूँदयायी सी गध थी जिसमे बारिश की मनहूस रातो वाले सूनेपन की आवाज घुसकर समाई-सी पडती थी। चन्द्रनाथ ने बिहारी के जवाब की प्रतीक्षा नही की, बोला—

—तुम्हारे कल के लिए मेरे पास एक काम है। किसी भी वक्त आकर घर मे खाट की निवार बिन देना। पैसे, चाहो तो, अभी ले लो।

बिहारी के जैसे प्राण लौट आए हो, ऐसे हडबडाकर उठ बैठा।

ओसारे से निकलकर चन्द्रनाथ मुस्कुराया—वह अठन्नी शायद बिहारी के भाग्य के लिए ही बची थी। उस अनुभूति के सुख मे वह मन ही मन भर गया जो किसी की मदद करने या किसी के काम आने पर अनायास मिलता है। सीढियो के निकट आकर विजया का ध्यान आया—उसे समझा लेना भर कठिन काम है।

विजया अपनी बायी कोहनी मोडे हुए, उस खुली बाँह का तकिया बनाकर आँख बन्द किए लेटी थी। निकट जाकर चन्द्रनाथ ने विजया की बाँह के उस मासल हिस्से को छू लिया, कहा—

—अभी तो सोई नही हो न ?

जवाब में क्षणभर चुप रहकर विजया बोली—

—तुम क्या बिहारी के पास गए थे ?

चन्द्रनाथ ने जैसे सुना नही, चुपचाप अपनी कमीज के बटन खोलने लगा। अपनी बॉह से जरा-सा सिर उठाकर विजया ने करवट बदली और चन्द्रनाथ की आँखो मे देखकर बोली—ऐसे कितने दिनो तक बिहारी को अफीम पीने के लिए पैसे दोगे ?

चन्द्रनाथ ने हँसकर कुछ कहने के लिए होठ खोले ही थे कि विजया बोली—

—वह सब रहने दो, मै जानती हूँ तुम क्या कहोगे। बिहारी के मोढे नही बिके और उसके पास अफीम के लिए पैसे नही थे। उसके हाथ-पॉव ऐंठ रहे थे, वह चिल्ला रहा था और बिना अफीम के मर जाता, यही न ?

चन्द्रनाथ थोडा-सा हँसा फिर कमीज उतारकर झटकारने लगा।

वहाँ से उठकर धीरे-धीरे विजया चन्द्रनाथ के पास आई और अबकी बार स्वर मे शिकायत के साथ ममत्व घोलकर बोली—

—ऐसे चोर उठाईगीरो की मदद करने से हमे क्या मिलेगा, बताओ भला ? ईमानदारी से जीना ये लोग नही जानते। बिहारी का क्या है—दो-चार रोज मोढे और नही बिके तो चोरी करके फिर जेल चला जाएगा। गधे को खेत खिलाया भी तो किस काम का—न पाप न पुण्य।

कमीज खूँटी मे टॉगकर चन्द्रनाथ ने चप्पले एक कोने मे सरकायी और अपनी खाट पर लेट गया। ओसारे से बिहारी की आवाज नही मिल रही थी—वह शायद अफीम पीने चला गया होगा। अनायास ही उसे अफीमचियो की कई गप्पे याद आयी, वह मुस्कराने लगा फिर एकबयक बिहारी की पूरी-की-पूरी आकृति उसकी आँखो के आगे आ खडी हुई। पैतालीस-पचास की उम्र, दुबला-पतला मामूली कद का जिस्म, झुलसा हुआ काला रग, छोटी-छोटी झिपझिपाती आँखे और निचुडा सा चेहरा। (जब वह आँखे बन्द किए और मुँह खोले हुए सोता है तो जिन्दा कम और मरा हुआ अधिक दिखाई देता है) जिस गॉव का अपने को उसने बतलाया—उसका नाम लोगों को याद नही रहता। कोई दूर के इलाके का गॉव होगा।

अफीम का नशा उसकी पुरानी आदत है, शायद इसलिए भी उसके कोई नहीं है। बस अकेले के लिए कमाना और खुद के लिए खरचना। चिन्ता करते चन्द्रनाथ ने उसे नही देखा। है तो मद और मास नही तो उपवास।

पिछले चार माह से बिहारी चन्द्रनाथ के ओसारे मे रहने लगा था। जेल से छूटने के बाद यह उसके लिए तीसरी जगह थी। एक जगह अधिक दिनो तक रहना उससे नही होता। आजकल लोग अच्छे फर्नीचर खरीदने लगे है—मोढो-पीढो को कौन पूछता है। विजया ने जब सुना कि बिहारी चोरी के इल्जाम मे जेल भोग चुका है, जैसे आग हो गई और किसी तरह उसे निकाल बाहर करने पर ही तुल गई। चन्द्रनाथ उसे किसी तरह बहला लेता है। कोई कुछ भी हो, अपने से क्या ?

सहसा दो-तीन बर्तनो के एकसाथ गिर झनझना उठने की आवाज से चन्द्रनाथ चौका। खाट से अपने को थोडा उठाकर उसने देखा विजया कोई बर्तन निकाल रही थी, जरा बेपरवाही से कुछ बर्तन आपस मे टकरा गए और फर्श मे गिरकर झन्ना रहे थे। छप्पर पर के शोर की ओर ध्यान बँटा और खिडकी की ओर निगाह गई। बाहर बारिश हो रही थी और घर कई जगह से चूने लगा था। खपरैल कई बरस से बदले नही गए—अब गल गए है—शायद यह बरसात न झेल पाएँ।

विजया उन जगहो पर बर्तन रख रही थी जहाँ-जहाँ पानी टपकता था। यद्यपि चन्द्रनाथ के सिरहाने के पास रह-रहकर टपकने वाली बूँद चादर को गीला कर रही थी लेकिन उससे उठा नही गया। पास की दीवार के खडिया-पुते साफ हिस्से मे जब छप्पर से फिसलकर बारिश उतरने लगी तब पहिले तो सूखी खडिया मिट्टी और पानी के मेल की बडी सोंधी और मादक गध उडी लेकिन फिर दीवार के उस हिस्से मे कई खाकी और आडी-टेढी लकीरे खिचने लगी। वेग इतना था कि जब वर्षा पछाड खाकर छप्पर पर गिरती तो खपरैल के तग सूराखो मे से एक फुहार-सी आँख, होठ और चेहरे को ढकने लगती।

पीछे के बरामदे की चौखट के पास बौछार के कारण डबरा-सा भरा

जा रहा था। जब तक पानी गिरता रहता है उसे झाड़ू से साफ करते रहना पडता है। वहाँ से चन्द्रनाथ ने पहिले कटोरे मे बटोर-बटोर कर पानी फेकने की आहट सुनी फिर झाड़ू के खुरचे जाने की आवाज के साथ विजया की बडबडाहट सुनाई दी—कौन जाने, इस बार की बरसात कितनी जाने लेकर जाएगी। पन्द्रह दिन हो गए न तो सूरज निकलता है और न झडी बन्द होती है।

शायद उसके घटे भर बाद विजया उस कमरे मे आयी। आकर चन्द्र-नाथ की खाट को पाटी पर बैठ गई। चन्द्रनाथ की केवल आखे बन्द थी। —मन और मस्तिष्क दोनो खुले थे। विजया जानती थी कि चन्द्र-नाथ का आँख बन्दकर पडे रहना सोना नही हो। आहिस्ते से बोली—तुम जयपुर कब जाओगे ?

प्रश्न के पहिले शायद चन्द्रनाथ भी वही सोच रहा था, बिना एक पल को रुके उसने जवाब दिया—किराये के पैसे कहाँ है ?

विजया ठण्ढी आँखो और भावविहीन चेहरे से ताकने लगी।

चन्द्रनाथ बोला—और फिर क्या ठिकाना कि पार्टनर जाते ही पैसे दे देगा।

उसके बाद किसी के पास कहने को कुछ नही रहा। विजया यद्यपि मौन थी लेकिन उसके मौन की शिकायते और तीखी होती है—उसे सहना चन्द्रनाथ से नही होता। वैसे भी चन्द्रनाथ के पास कहने का है क्या ? ब्याह के पिछले तीन बरसो का लेखा-जोखा व्यर्थ है। पहिला बरस कर्ज की अदायगी और उससे पदा होने वाली मुश्किलो मे गुजर गया (यह कर्ज ब्याह के लिए थोडी जमीन रेहन रखकर लिया गया था) दूसरे साल चन्द्र-नाथ महत्वाकाची हो गया। किसी दफ्तर की अस्सी रुपयो की नौकरी से पेट भले किसी तरह भर जाय मन नही भरता था इसलिए एक दिन चन्द्र-नाथ ने बाप-दादे की आखिरी सम्पति—मकान गिरवी रखकर पाँच सौ रुपये लिए और एक व्यक्ति से पार्टनरशिप मे बैकरी खोल ली।

चन्द्रनाथ का पार्टनर उससे चालाक था। वह कोचीन से भटकता-

भटकता यहाँ तक आ गया था और कई होटलो मे काम कर चुका था। चन्द्रनाथ ने अपनी नौकरी तो कुछ दिन जारी रखी लेकिन पार्टनर की नौकरी फौरन छुडवा दी और इस समझौते पर धधा शुरू हुआ कि पूँजी चन्द्रनाथ की और श्रम और अनुभव पार्टनर का।

यह पूरी सम्पति की बाजी थी लेकिन चन्द्रनाथ कागज-पत्तर से अधिक आदमी को जानता है। कौन धोखा दे सकता है और कौन नही, यह चन्द्रनाथ की आँखे एक नजर मे ही समझ लेती है अत कोई लिखा-पढी नही हुई।

लेकिन कभी-कभी आशका वाली बात आगे आ ही जाती है। वहाँ बैकरी चल नही पाई, घाटा होने लगा अत पार्टनर की सलाह से बैकरी जयपुर ले जाई गयी।

सब कुछ भाग्य के भरोसे छोड और जिम्मेदारी पार्टनर पर डाल वह लाभ के समाचार की प्रतीक्षा करने लगा यद्यपि पार्टनर की चिट्ठी मे हर-बार यही लिखा रहता कि जाने उन लोगो के भाग्य को क्या हो गया है जो सोना छूते है तो मिट्टी हो रहा है। एक बार की चिट्ठी मे लिखा कि वह अपनी पुरानी नौकरी करना चाहता है (क्योकि इस धधे मे पेट नही भरता) इसलिए चन्द्रनाथ आए और अपनी बैकरी सम्हाल ले।

लाभ की प्रतीक्षा मे आखिर खाना-पीना तो बद नही होता। नौकरी मे कम-से-कम एक बधी हुई रकम मिल जाती थी लेकिन यहाँ तो सब कुछ अनिश्चित था। लोग कहने लगे कि चन्द्रनाथ ने नौकरी छोडकर अच्छा नही किया। विजया कहती कि चन्द्रनाथ बिरयानी की आस दिला भूखी सुलाना चाहता है और दूर-दराज के रिश्तेदारो को शिकायत थी कि जायदाद के नाम पर जो छोटा-मोटा मकान और बाप-दादे की निशानी थी, चन्द्रनाथ ने उसे भी....

अचानक विजया पर निगाह गयी—खाट की पाटी पर बैठी-बैठी वह अब ऊँघने लगी थी। सीने का आँचल ढलक कर गिर गया था और गर्दन ढीली होकर एक ओर झुक गयी थी। वह थोडी देर तक अपलक उस अलस-

सी हो गई विजया को देखता रहा—देखता रहा जब तक कि आँखें डबडबाकर धुँधला न गयी। विजया के लिए जितना प्यार मन मे नही उमडा उससे अधिक दया आयी और अचानक, जैसे अब तक उस पर ध्यान न देकर उसने गुनाह किया हो, ऐसे महमकर उसके कधे को छुआ, जगाया और बडे आदरपूर्वक उसे अपने सीने पर खीच अपने को उसकी आड छुपाने लगा।

कई दिनो से लगातार पड रहा मेह थमा भी तो बादल नही छटे और दिन-भर राख-जैसे उजाड चेहरे वाला वातावरण और ऊबा देने वाली बदली रही। ऐसे मे तन-मन दोनो का जोड-जोड टूटता है, एक बेनाम-सी उदासी घेर लेती है और विजया का मन सारे बधनो को तोडकर बिना पख के अपने गाँव उड जाता है।

गाँव की स्मृति तब अचानक लहगे-पोलके मे एक दस-बारह बरस की विजया उसके आगे ढकेल देती है

दिन और रात की लगातार झडी के बाद जब-जब बरसात दम लेती है, तालाब, डबरो और खेतो मे बरगनी मछलियाँ उछल-उछल आती है। गाँव के तमाम हम उम्र लडके-लडकियो के निलकते समूह के बीच बरसात के मटियाले और गँदले पानी मे फिसलते-गिरते लोग याद आए और उसके साथ जुडी-मिली कई स्मृतियाँ कौध कर रह गयी। हाय, वह खेत की कच्ची मेढो पर बाहे फैलाकर बिला वजह दौडना, एक-दूसरे को ढकेलना, गिरना-पडना और कीचड-पानी से लथपथ, सरकती शाम मे रुपहले रग की ढेर-सी चमकती मछलियो के साथ घर लौटना।

अक्सर एक टीन की ढिबरी बारे नहाने के पत्थर के पास उन मछलियो को उलीच, राख मे सान-सानकर जब वह एक-एक के चमकते छिलके उतारती तो मन का उल्लास जैसे मर-सा जाता और चाहे जितने शौक से राधे, उससे खाया नही जाता।

आहट बहुत हल्की थी लेकिन विजया चौककर डर गयी। पाँव जरा-से

काँपे, धडकन पल भर के लिए तेज हो गई और हथेलियाँ पसीने से गीली हो आयी। धुँधया गई शाम की सीली फिजा मे जो आकृति बढी आ रही थी उसे पहिचानने की आवश्यकता नही पडी। बिहारी था, शायद बाजार से लौट रहा था।

अपने को सयतकर विजया झल्लाई—

—बिहारी, बिना आहट किए, क्या चोरो की तरह चुपचाप घुसे आते हो ?

उस बात का जवाब बिहारी ने नही दिया। बताया कि चन्द्रनाथ मिले थे—कहलवाया है कि वह शायद बहुत देर से लौटे सो विजया उसके लिए प्रतीक्षा न करे।

बिहारी जब सुबह बाजार गया था तो उसके हाथ मे बहुत-से मोढे थे लेकिन अब केवल एक थैली अटक रही थी। आज शायद सारे मोढे बिक गए। अपनी आवाज की थोडी मिठास और आदर मे लपेटकर, ओसारे की ओर चुपचाप ही बढे जा रहे बिहारी को रोकने-के-से अन्दाज मे वह बोली—

—क्या खरीद लाए, बिहारी ?

बिहारी हँसकर बोला—मछलियाँ है। आज तो बाजार जैसे मछलियो से पट गया है।

बिहारी के जाने के बाद भी विजया वही खडी रही। चन्द्रनाथ ने स्वय आए बिना खबर भिजवा दी कि वह देर से आएगा। रुपयो का प्रबन्ध शायद न हो पाया हो। पैसो का ख्याल आते ही उसे लगा कि वह बहुत थक गयी है, टाँगो की मासपेशियाँ दुखने लगी है और उससे खडे रहना नही होगा। दीवार मे पीठ सटाकर और पूरा-पूरा भार डाल, जिस्म को लगभग घसीटती-ही वह चौखट पर ही बैठ गई। उधारी के रुपयो से कब तक चूल्हा जलता रहेगा ?

बिहारी फिर आया—उसे नमक चाहिए था। कहने लगा बाजार से खरीद लाने की बात वह भूल गया और चिराग-बत्ती लगने के बाद दूकान वाले नमक नही देते।

नमक देकर जाने विजया को क्या हुआ, बिहारी के साथ-साथ हो ली और चलते हुए पूछा—क्या बनाओगे ?

—मछली का साग, बिहारी बोला ।

विजया ने आग की लपटो मे चढी और तप रही काले पेंदे वाली पतीली पर अपनी निगाह डाली और एकाएक हँसकर बोली—अच्छा बिहारी, तुम्हारा मछली का साग मै बना दू तो क्या मुझे भी खाने दोगे ?

तुरत जवाब देते बिहारी से बना नही । विजया की बात को कुछ समझते और कुछ न समझते हुए जरा अटककर वह हँसने लगा—नही, यह पाप मुझसे नही होगा ।

विजया हँसी, फिर जरा और जोर से हँस दी ।

आहाते की कई-कई ईट सरकी और कई साल की बरसात खाई दीवार के ऊपरी हिस्सो मे यहाँ से वहाँ तक काई की सब्ज मखमली चादर लिपट गयी थी । वहाँ सुबह की धूप अपने बाल खोले सूख रही थी । ऐसे मे दीवार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आँखे बिछा देने के सुख की अनुभूति कितनी कोमल थी ।

आँगन मे रची काई जरा धूमिल, मटमैली और बिच्छल-भरी थी । उसमे अपने अँगूठे के नाखून गडाती विजया सम्हले हुए डग उठाती आयी । पिछली रात से अब तक दोनो मे अब तक कोई बात नही हुई थी । रात चन्द्रनाथ बहुत देर-गए आया और सो गया ।

विजया नहाकर लौटी थी । बिना साये की बारीक और सफेद साडी उसके टखनो के काफी ऊँचे से लेकर कधे तक बेतरतीबी से लपेटी-भर गयी थी । बाल गीले थे और पीठ के जितने भाग मे लोट रहे थे, उतना हिस्सा भीग रहा था ।

चन्द्रनाथ एक बार नजर-भर देखकर बोला—

—सोचता हूँ, मकान का आधा हिस्सा बेच दूँ ?

विजया के दाहिने कधे का पल्ला सरक गया था और शोल्डर-बोन और

सीने के मेल की लकीर उघड रही थी। उसी पर पल्ला खीचकर विजया ने दोनो बाहे उठायी, पीछे पीठ की ओर ले जाकर हाथो से बाल सकेले और उसमे एक गठान डालकर चन्द्रनाथ की ओर आश्चर्य से देखने लगी। घटो का दबा हुआ उसका मौन सहसा पूरी कड़वाहट के साथ फूटा—उन पैसो के खत्म होने के बाद क्या मुझे बेचोगे ?

चन्द्रनाथ के हाथ-पाँव जहाँ के तहाँ जम गए। आहत होकर वह कड़ुवी हो गई विजया को ताकने लगा।

—मै कहती हूँ, हम लोग बिहारी से भी गए-बीते हो गए है। जितना वह खा-पी लेता है, उतने के लिए तो हम लोग सोचते रह जाते है।

सूखे पत्तो पर दबाव पडने से कई जगह से टूट जाता है पर चन्द्रनाथ के टूटने मे स्वर नही था। एकाएक ही काले पड गए उसके चेहरे मे कुछ पथरीली-सी रेखाएँ आ गयी। वह अनिमेष विजया की ओर देखता रहा फिर विद्रूप हँसी हँसकर बोला—

—विजया, बिहारी की तरह तुम भी बाजार मे बैठो, अच्छी तरह खा-पी लोगी।

इससे पहिले कि विजया अपने सूखकर चटख रहे तालू को गीलाकर कुछ कहती, चन्द्रनाथ कमरा छोडकर जा चुका था।

दरवाजे का पल्ला सरकाकर बिहारी भीतर आ गया। विजया भी उसी कमरे मे थी लेकिन बिहारी ने थैली चन्द्रनाथ को बढा दी और बोला —मछली है।

थैली लेते हुए चन्द्रनाथ ने आँखो मे प्रश्न समेटकर विजया की ओर देखा और पूछा—क्या तुमने मँगाई थी ?

विजया के चेहरे का रग कम हो गया। उसने चन्द्रनाथ की ओर देखा, बिहारी को घूरने लगी फिर जैसे भीतर से उबल आती किसी चीज को हँसकर उडाती हुई बोली—मँगायी तो न थी, शायद हम पर तरह खाकर बिहारी मछली देने आया है।

लेकिन बिहारी ने बताया कि बाजार मे सरकारी मछलियाँ बिक रही थी। उसे बडी मछलियो का बडा शौक है सो वह भी वहाँ तक चला गया लेकिन वे लोग एक सेर से कम देने को तैयार ही नही हुए सो यह सोचकर उसने खरीद ली कि आधी वह यहाँ दे जाएगा।

चन्द्रनाथ बोला—लेकिन हमसे मछली के पैसे अभी देना तो नही होगा बिहारी।

सुनकर लौटते हुए बिहारी ने कहा—मैंने विश्वास खो दिया है तो क्या दूसरो पर विश्वास करूँ, यह अधिकार भी मुझे नही है ?

विजया वहाँ से पहिले ही उठकर चल दी थी।

रात देर-गए चूल्हे की आँच ठण्ढी पडी। पिछले दो-तीन घटो तक आग के पास तपकर विजया उठी तो पाँव सुन्न हो गए थे और धुँआ-भरी आँखे कडुवी हो रही थी। उसे लगा कि उसके मुँह का स्वाद तक बिगड गया है।

चूल्हे के भीतर लकडियाँ जलकर छोटी हो रही थी और उनके अगारो मे परत आ गयी थी। विजया ने भीतर की लकडियाँ खीचकर बाहर की, चूल्लू मे थोडा पानी लिया और लकडियो पर उलीचकर उठ गयी। अकस्मात पानी पडने पर लकडियो के जलते सिरो और चूल्हे की गोद से एक झुँझलाए हुए स्वर के साथ राख-मिला धुँआ उठकर फैलने लगा।

बाहर अँधेरे मे सन्नाटे की थकन-भरी साँस और गहरी रात के स्वर थे। सिनेमा हाउस वहाँ से अधिक दूर नही पडता। सेकेड शो का शायद इटरवल हुआ था और रिकार्डिङ्ग की आवाज आहिस्ते-आहिस्ते आ रही थी। ओसारे मे अँधेरा था और वहाँ से बिहारी की गहरी नीद के भारी निश्वास का स्वर उठ रहा था। विजया थोड़ी देर सन्नाटे को सुनती रही, अधेरे मे देखने का प्रयास किया—अभी भी चन्द्रनाथ नही आ रहा था। उसे कितनी तेज भूख लग आयी थी।

बावर्चीख़ाने मे आयी। खिडकी खुली रह गई थी और पडोस की बिल्ली उसमे से होकर किचन में घुसी किसी खुले बर्तन को सूँघती बैठी थी। उसे

हकाल उसने खिडकी के पल्ले लगाए, थोडी देर वही खडी रही फिर एकाएक चूल्हे के सामने बैठ, मछली वाली पतीली खीची, ढक्कन खोला, करछुल लिया और एक प्लेट मे कुछ शोरवा और मछली के मोटे-मोटे टुकडे निकाले। प्लेट हाथ मे लिए-लिए उसने दरवाजे की ओर निगाह डाली—चन्द्रनाथ का कोई पता नही। जाने कितनी देर बाद आए।

प्लेट का शोरवा बहुत गाढा था और खूब-भुने मसाले मे सने-सनाए मछली के मोटे-मोटे तैर रहे टुकडो से हल्की-हल्की भाप उठ रही थी। फुर्ती से विजया ने प्लेट होठो से लगाया, शोरवे के कई घूँट लिए, मछली के एक टुकडे को दाँतो से दबाया पर तभी उसमे का एक काँटा दाँतो के अंतरो मे फँस गया, जीभ जलने लगी और बाहर चन्द्रनाथ के जूतो की आहट मिली।

जल्दी-जल्दी मे उसने प्लेट का बच रहा हिस्सा पास के टाके मे डाल, प्लेट एक ओर सरकायी और आँचल से मुँह पोछकर, बाहर के दरवाजे की ओर चन्द्रनाथ से मिलने बढी।

विजया के पूछे बिना ही चन्द्रनाथ ने सफायी देनी शुरू कर दी कि घर से निकलते ही चन्द्रनाथ का बडा पुराना दोस्त महेन्द्र मिल गया। वह जयपुर की म्युनिसिपैल्टी मे सेनीटरी-इस्पेक्टर है और उसके बैकरीवाले पार्टनर को अच्छी तरह जानता है। चन्द्रनाथ खुशी से छलक रहा था, बोला—अब हमारे दिन पलट गए विजया! महेन्द्र कहता था कि बैकरी वाला उसके चंगुल मे है, बिजनेस खूब चल रहा है और जयपुर पहुँचते ही वह मेरा शेयर भिजवाएगा।

विजया अविश्वास से हँसी और फीके ढग से बोली—

—दिन पलटने की खुशी मे आज क्या खाना भी नही खाओगे?

—नही, चन्द्रनाथ झेपकर हँसने लगा—भूख बहुत लगी है!

किचन की खिडकी फिर खुली तो सीली हवा के कई-कई झोंके एकसाथ घुस आए। पूरबी आकाश के कोने मे दूर खडे एक खजूर की आकृति के पास बिजली की एक रेखा ने क्षण भर के लिए आँखो में चकाचौध भर दी।

थाली परोस रही विजया की ओर देखकर चन्द्रनाथ बोला—तुम भी आज मेरे साथ खाओ न।

विजया बोली—तुम खा लो, फिर मेरा खाना होता रहेगा।

उस आध घंटे में चन्द्रनाथ कई तरह की बातें करता और बेतरह हँसता रहा। विजया थोडी देर तक उसकी हँसी में साथ देती रही लेकिन बाद में मुस्कुराहट से उतरकर फीके होठों से केवल ताकने-भर में आ गयी। खाना खत्म हुआ तो चन्द्रनाथ ने कहा—

—अब तुम खा लो, मैं पास बैठा हूँ।

—तुम्हारा बैठना क्या जरूरी है?

—हाँ, आज नींद जल्दी नहीं आएगी।

—तो चलो, मैं फिर खा लूँगी।

—मेरे आगे खाते हुए क्या अब भी शर्म आती है? चन्द्रनाथ हँसने लगा विजया होठों में ही हँसकर बोली—

—हाँ, कितनी बेर तुम्हारे आगे खाया है, बताओ तो?

उठकर विजया बर्तन समेटने-धरने लगी। चन्द्रनाथ की उडती-उडती निगाह कालिख लगे बर्तनों पर गई और जैसे एकाएक कुछ स्मरण हो आया हो, ऐसे उठते-उठते बैठ गया और विजया का हाथ पकडकर बोला—अपने लिए क्या खास चीजें छुपा रखी हैं, जो अकेले में खाओगी?

—हाँ।

—भला देखूँ तो, कहकर चन्द्रनाथ पतीली की ओर बढा पर उससे भी अधिक तेजी से विजया ने बढकर पतीली पकड ली और बडे अनुनय-भरे स्वर में बोली—

—इसे रहने दो।

लेकिन उस छीना-झपटी में विजया की हथेली को अपनी तेज कोर से चीरती पतीली चन्द्रनाथ के हाथ में आयी और ढक्कन सहित झनझनाकर फ़र्श पर गिर पडी।

विजया अपनी कटी हथेली में उछलता खून दबाए थककर बैठ गई,

दाहिने जघा के एक ओर अपना चेहरा लटका लिया और रोने लगी—मैं तुम्हारे पाँव पडती हूँ, इसे रहने दो मैं तुम्हारे

लेकिन चन्द्रनाथ वहाँ नही था। सामने भाप-सना ढक्कन उल्टा हुआ था और करछुल से खुरची हुई खाली पतीली लुढकी हुई थी।



भीतर-बाहर

बेगम साहिबा ने दहलीज मे पॉव रखा नही और आमना बिछ गई। वैसे तो आव-भगत और स्वागत-सत्कार के लिए दरवाजे के पास ही जाहिदा थी, शमीम भी और आँगन मे बडी बी अलग कदील लिए आने वालो को रोशनी दिखाती दहलीज तक पहुँचा रही थी लेकिन मेहमान मेहमान मे तो फर्क होता है न। आजकल की नई उम्र की लडकियाँ और वह भी कालेज मे पढने वाली—शायद छोटे-बडो मे तमीज न कर पाएँ और कोई ऊँच-नीच या ऐसी-वैसी बात हो गई तो कट गई न खान्दान की नाक, फिर कोई बात बनाए भी क्या होता है? सो बेगम साहिबा को देखते ही आमना ने हाथ मे रखा खजूर का पखा पटका झपटकर उठी, पल्लू सिर पर रखती बेगम साहिबा की ओर बढी और ललककर हँसते हुए वही से पुकारा—आइए बेगम साहिबा, खुशआमदीद! फिर पास आकर जरा झुकी और दाहिने हाथ की उँगलियाँ पेशानी से छुआती बोली—आदाब अर्ज करती हूँ!

शाहिदा मुँह मे पान की ढेर-सी पीक भरे बैठी थी। अपने बाजू मे बैठी रशीद मुन्शी की बीवी का ध्यान आमना और बेगम की ओर आकर्षित करने के उसने उसे कोहनी मारी लेकिन मुन्शी की बीवी अपने बच्चे को आँचल डाले दूध पिलाने मे लगी थी। शाहिदा की कोहनी उसके घुटने मे न लगकर बच्चे के सिर पर लगी और बच्चा एक बारगी ही फुक्का मारकर रो पडा। मुन्शी की बीवी ने चौककर बच्चे को देखा, लाल-पीली आखो से शाहिदा की ओर ताका, आचल सरकाकर बच्चे को उठा लिया और ओ-ओ करके मनाने लगी।

शाहिदा बेवकूफ की तरह थोडी देर ताकती रही। कुछ कहना चाहा लेकिन मुँह मे पीक भरी हुई थी। इधर-उधर नजरे डाली थूकने की जगह नही थी। औरते और बच्चे खचाखच भरे हुए थे। मजबूरन अपनी ठोढी उठाए बाहर चली गई। बच्चे का रोना रुका नही और लौटते-लौटते शाहिदा ने सुना मुन्शी की बीवी बच्चे के सिर को मलती हुई सामने वाली से कह रही थी—

—आग लगे ऐसे छिछलेपन पर। ऐसे जोर की कोहनी मारी कि बच्चे की साँस उखड जाए ।

पास ही की किसी ने जवाब मे हमदर्दी जतलाती कहा—ऐ हाँ बाई, इतनी मुसटडी धरी है, क्या कम लगा होगा बच्चे को ? क्या तमाशा है, खुदा-रसूल के चरचे की जगह भी

शाहिदा को नजदीक आई देखकर वह एकाएक चुप हो गई, थोडी देर के लिए दूसरी तरफ देखने लगी फिर कहा धोखा हो गया शाहिदा से। वह दरअसल तुम्हे कोहनी मार रही थी लग गयी बच्चे को।

बैठती हुई शाहिदा ने शरमिंदा होकर कहा—देखूँ, बहुत लग गया क्या ? लेकिन मुन्शी की बीवी ने न तो शाहिदा की बात का जवाब दिया और न उसकी ओर देखा ही बस लगातार मनाने की कोशिश करती रही और लाख हिलाने-डुलाने और ओ-ओ, ना बाबा, ना कह-कहकर भी बहलाने पर भी बच्चे ने रोना बन्द नहीं किया और बहुत-सी औरते पलट-

पलट कर देखने लगी तो सारा तान बच्चे पर तोडती हुई उसने एक धौल पीठ पर जमाई और कहा—ले और रो।

बच्चा पूरे जोर से चीखने लगा और मुन्शी की बीवी उसे उठाकर आँगन मे चली गई।

शाहिदा क्या कहती ? जरा-सा धोखा हुआ और सारी औरतो के बीच वह जलील हो गई। उसके पेट मे क्या औलाद नही ? बच्चो की मुहब्बत क्या वह नही जानती ? ऐ, अकेले मुन्शी की बीवी ने ही तो बच्चे नही जने ? उसकी भी प्यारी-सी बच्ची है लेकिन ऐसे पिनपिने और रोती सूरत के बच्चो से खुदा ही बचाए।

बाहर मर्दाने मे मौलाना साहब तकरीर करते-करते पूरे जोश मे आ गए थे और अपने अदाज और लच्छेदार भाषा से लगभग सन्नाटा खीच दिया था।

शमीम अब पर्दे के पास जाहिदा के साथ खडी थी। वह जाहिदा से आहिस्ते-आहिस्ते कुछ कहती, वे दोनो परदे से बाहर थोडा झाँककर देखती और मुँह मे दुपट्टा ठूँस-ठूँसकर हँसती।

वाज शुरू हुए अभी एक घटा नही हुआ, दस भी नही बजे और पीछे थोडा अँधेरे मे बेठे अलाउद्दीन सा० (जो पिछले साल हजकर आए थे) आँखे बन्द किए धीरे-धीरे झूमने लगे, लेकिन थोडी देर मे ही झूमना बद हो गया और अलाउद्दीन सा० अपनी सफेद और मुकद्दस दाढी के साथ मिनट-मिनट पर झोके खाने लगे।

पास बैठे कुछ शरारती बच्चे थोडी देर तक तो घुटनो की आड मुँह छिपा-छिपाकर हँसते रहे लेकिन जैसे ही अलाउद्दीन सा० का झोका मिनट से उतर कर सेकड पर आ गया, उनमे से एक ने जरा हिम्मत की, आगे बढा और अलाउद्दीन सा० की पीठ के बहुत पास बैठ, सबकी नजरे बचाकर, बडी सफाई के साथ उनके ढीले कुरते का एक छोर चटाई की डोरी से बाँध दिया।

शमीम और जाहिदा का परदे के पास खडे रहना और हँसना अधिक

देर तक नही हुआ क्योकि किसी ने देख लिया कि मरदाने मे सबसे पिछली सफ मे बैठा हुआ मालगुजार का लडका सलीम बार-बार इधर पर्दे की ओर ही देखे जा रहा था। थोडी ही देर मे औरतो मे चिमगोइयाँ शुरू हो गई।

एक ने खालिदा की ओर झुककर कहा—हाय अल्ला, तौबा! कैसी दीदाफट लडकियाँ है। न बडो का लिहाज न छोटो का डर!

खालिदा ने सुना नही, अपने पास वाली से बातो मे लगी थी। पहिले तो उसने पूछा कि कौन सा साग बनाया, फिर सब्जी न मिलने की शिकायत करती हुई आजकल की मँहगाई और अपने शौहर की फिजूलखर्ची की बात करने लगी—हर चीज मे आग लग गई है। खालिस घी मिलता नही। गोश्त दो रुपये सेर का बिकता है। अच्छा कपडा तीन रुपये गज से नीचे नही आता। समझ मे नही आता कि हमारे जैसे छोटे लोग जिये भी तो कैसे जियें। अब देखो न, इन्हे दो सौ रुपये मिलते है

वहीदा को लगा कि खालिदा घुमा-फिराकर केवल यह बताना चाहती थी कि उसके शौहर को दो सौ मिलते है! अरे दो सौ मिलते है तो मिला करे। सुनाती किसको है। वहीदा भले ७० रुपयो मे अधिक हर माह न देख पाए लेकिन साथ इज्जत के तो रहती है। वहीदा से खालिदा का क्या छुपा है? खालिदा शान बघार ले इन लोगो के सामने जो कुछ जानते नही बेवकूफ है, वहीदा के आगे क्या जबान खोलेगी? बडी बान से तौबा, उसे सब मालूम है कि खालिदा के शौहर के दौरा चले जाने पर उसका मामूजाद भाई क्यो दिनरात बाजीजान, बाजीजान करके घुसा रहता है। अरे, मान लिया कि भाई है, एकाध-दो बरस छोटा भी है पर इसका मतलब यह तो नही कि रात-दिन मुँह से मुँह जोडे बैठे रहो और इतने बडे, जवान और तन्दुरुस्त लडके की राने दबाओ।

और अन्नू की माँ क्या बोलेगी माटीमिली? अरे लडकियाँ है, हँसने-खेलने की उम्र है। परदे के पास खडी होकर हँस दी तो कौन-सा गुनाह कर डाला? अब वहीदा की जबान न खुलवाओ। शमीम-जाहिदा ने ताक-

झाँक ही तो की, ऐसा कुछ तो नही किया कि कुँआरेपन मे पेटभर जाए और किसी बेवकूफ मास्टर को घेरना पडे ? पाँच महीने मे ही नौ महीनो का बच्चा तो नही जन दिया ?

वहीदा ने वैसे कुछ नही कहा लेकिन खालिदा और अन्नू की माँ से बात फिसलती-फिसलती वहाँ से बडी दूर बैठी जाहिदा की खाला तक पहुँची और उसने वही से पुकारकर डाँटा—अरी ओ जाहिदा, परदे की आड से क्या अपने खसम को झाँक रही है हरामजादी !

जाहिदा इतनी औरतो के बीच जैसे कटकर रह गई। शमीम उतरा हुआ चेहरा लिए अँधेरे कोने मे सरककर बैठ गई और जलकर जाहिदा को सुनाया—

—ख़ाला बूढी हो रही है न, जवान लडकियो को देखकर उनके सीने मे साँप लोटने लगता है !

शमीम के पीछे कोई जाने किस बात पर कह रही थी—अरे बाजी की बात, नई दुल्हन है ठीक है। बडे घर की बेटी है यह भी ठीक। लेकिन यूँ रक्कासा की तरह सिगार करके ही-ही करते घूमना क्या अच्छा लगता है ? कुछ तो बडे-बूढो का लिहाज होना चाहिए।

बाहर मौलाना सा० का बोलते-बोलते गला सूखने लगा—बैठकर चाय पी रहे थे। पिछले दो हफ्तो से सफर और जगह-जगह की तकरीरो से उनकी आवाज ने तो करीब-करीब साथ छोड ही दिया था, अब जिस्म भी साथ नही दे रहा था। कहने लगे कि अधिक देर बोलना अब उनसे नही होगा। अभी-अभी इस्लाम को उन्होने बिल्कुल साइटिफिक ढँग से समझाया था। लोगो के सामने यह बात रखी कि यह मजहब इसान को इसानियत की सीख देता है, छोटे-बडे और अमीर-गरीब मे भेद करना नही सिखाता। उन्होने अफसोस जाहिर किया कि लोग मजहब को ठीक से समझ ही नही पाते। जो छोटे-बडे, अमीर-गरीब और इसान-इसान में फर्क करता है वह और कुछ भले करे खुदा की इबादत कतई नही करता।

चाय पीकर उठने के बाद मौलाना सा० ने घडी देखी—अभी सिर्फ

साढे ग्यारह बजे थे। इस आश्वासन के साथ कि रात हालॉकि ज्यादा हो गई है लेकिन वे लोगो का अधिक वक्त न लेकर कुछ जरूरी बाते बता देना चाहते है, उन्होने औरतो और लडकियो के लिए मजहब की आवश्यकता की बात शुरू कर दी।

सामने बच्चो की कतार अब गायब हो चुकी थी और धीरे-धीरे एक-एक करके सभी अपनी जगह पर टॉगे फैलाकर आहिस्ते से लुढक गए थे। अलाउद्दीन सा० मौलाना की चाय के दौरान अपनी ऑखे खोले किसी तरह सम्हल गये थे लेकिन मौलाना की तकरीर शुरू होते ही जरा पीछे सरक, अपने को खभे की आड छिपाया और नए सिरे से झोके खाने लगे।

अलाउद्दीन सा० को नीद आने की बात अजीब है। उन्होने शहर भर मे अपने को मशहूर कर लिया था कि उन्हे रात मे नीद नही आती इसलिए वे आधी-आधी रात तक अपने मकान के सामने अँधेरी सडक पर टहला करते है। अब उन शैतान बच्चो को कोई क्या करे जिन्होने अला-उद्दीन सा० के आधी रात मे टहलने को लेकर कई गढे हुए किस्से मश-हूर कर दिए थे। वे तो बिचारे अल्लाह वाले है। घर से मसजिद, मसजिद से घर। आप भला जग भला।

उनसे कुछ दूर पर नईम सा० थे। चालीस की उम्र ही उन्होने दुनिया का मोह छोड दिया था। उनका कुछ बरस पहिले का लहीम-शहीम जिस्म अब सूखा जा रहा था। केले और कॉटे की क्या प्रीत ? इबादत मे जान-जिस्म की मुहब्बत कैसी ? पॉच बरस पहिले उनकी जवानी के किस्से घर-घर सुने जाते थे। आज भी कुछ लोग नईम सा० की पिछली जिन्दगी की बात छुप-छुपाकर कहते-सुनते है। लेकिन उससे क्या ? ठोकर खाकर ही तो आदमी सम्हलता है। अब तो तन-मन दोनो की हुलिया बदल गई थी। चिकने गोरे गालो पर बेतरतीबी से उग आई दाढी, कधो तक झूलने वाले लाबे बाल (क्योकि किसी पीर के मुरीद भी थे) और हमेशा सजीदा बना रहने वाला चेहरा—कई बरस से लोगो ने उन्हे मुस्कुराते हुए नही देखा। एक टॉग मोडकर दूसरा घुटना ऊपर किए और रान की आड मे सिर

छुपाए (रोशनी से आँख चौंधियाती है !) नईम सा० बैठे हुए थे। उनकी आँखे बन्द थी। कमबख्त आँख ही तो सारे गुनाह की जड होती है ! उन्हे जितना बन्द रखा जाय उतना अच्छा। कुछ लोग होते है जो मीलाद, वाज वगैरह मे ख्वामख्वाह मौलाना को टुकुर-टुकुर देखे जाते है। नईम सा० उन लोगो मे नही। आँखे बन्दकर के सुनना ही डूबकर सुनना होता है, इसे वह अच्छी तरह जानते थे।

बारह बजते-न-बजते मजलिस और सजीदा हो गई और करीब-करीब हर आदमी ने (मौलाना के बिल्कुल सामने बैठे दो चार को छोडकर) नईम सा० की तरह डूबकर सुनना शुरू कर दिया।

कुछ देर मे ही वाज खत्म हुआ। आधी रात का सन्नाटा कई मिले-जुले कठो के सलाम पढने से उघडा। सलाम पढना हुआ और मौलाना सा० की तकरीर की तारीफ एक कोने से दूसरे कोने तक उछलने लगी और वहाँ के अधिकाश ने एक के बाद एक अपने-अपने घर के प्रोग्राम की सूचना मौलाना को देनी शुरू कर दी। मौलाना सा० ने साफ-साफ कहकर माफी माँग ली कि उनके दूसरे प्रोग्राम दो-तीन शहरो मे पहले से तय है लिहाजा दो दिनो से ज्यादा टिकना उनसे नही होगा। सवाल सिर्फ दो रातो का था अत अपने-अपने के लिए बडी खीचतान मची और अत मे एक दिन मजिस्ट्रेट सा० और दूसरे दिन सेठ बरकतुल्ला (जो पहिले बाजार-हाट मे बोरी बिछाकर नमक बेचते थे और अब दलाली के धधे से शहर के व्यापारियो मे से थे) के यहाँ तकरीरे तय हो गई।

बशीर मियाँ मरी बकरी की तरह बट-बट देखे जाँय। उगलते बने न निगलते। मौलाना सा० को जब बशीर मियाँ ने कही नागपुर मे सुना था तभी मन हो मन तय कर लिया था कि उन्हे किसी तरह अपने शहर तो बुलवाएगे ही, अपने घर मे भी तकरीर करवाएँगे। अपने घर मे मीलाद-वाज कराने की आरजू बरसो पुरानो थी लेकिन पैसा ही नही जुट पाता था लेकिन इस बार वह चिनगारी शोला बन गई और नागपुर से लौटने के बाद मौलाना सा० के बुलवाने के लिए खत लिखने से लेकर बस-स्टैण्ड

मे गजरे लेकर खडे रहने तक का काम बशीर मियाँ ने किया था। पैसो से गरीब हुए तो क्या हुआ, दिल तो छोटा नही था। किसी तरह उन्होने पेट काट-काटकर कुछ पैसे जोड लिए थे और मौलाना के आते ही उन्होने सबसे पहिले झेपते हुए उनसे कहा था—मेरे गरीबखाने पर भी आना होगा। ये लोग तो आपका आज इतजार कर रहे है। मै तो पाँच महीनो से आपकी तैयारी मे हूँ मौलाना सा० ने कहा था—बशीर मियाँ, मै आप लोगो की खिदमत के लिए ही तो आया हूँ।

सचमुच बशीर मियाँ ने काफी तैयारी कर ली थी। शीरनी मे खजूर या बिस्कुट (पैसो मे दो वाले) बशीर मियाँ को पसद नही। उसे बाँटना उन्होने कभी ठीक नही समझा। होटल वाले को दस सेर मिठाई का आर्डर बहुत पहले से दे रखा था। बिछावन के लिए बडी-बडी दरियाँ आज सुबह से ही आ गई थी और दावत तो बशीर मियाँ ने हफ्ते भर पहिले से बाँटना शुरू कर दिया था।

ऐन वक्त पर इस तरह की बाधा आने की बात उन्होने सोची भी न थी। लोग तो बस मजिस्ट्रेट साहब और सेठ बरकतुल्ला का नाम सुनकर चुप कर बैठे। किसी ने नही जानने को कोशिश की कि मौलाना को बुलवाने मे उन लोगो की दिलचस्पी कितनी थी और चन्दे मे क्या दिया था। अब जहाँ इतने बडे-बडे रोब-दाब वालो ने कुछ नही कहा तो बशीर मियाँ की क्या गिनती। चुपचाप मुँह खोले, मौलाना, मजिस्ट्रेट साहब और सेठ बरकतुल्ला को देखे जाँय। कोई उन भले आदमियो से जाकर पूछता कि बशीर मियाँ ने हफ्ते भर से जो इतना हल्ला मचा रखा था आखिर उसका क्या होगा। बशीर मियाँ ने एक-एक के चेहरे को टटोला—कही कोई नही। सब मुँह देखे बीडा देने वालो मे से थे!

तभी शमीम के वालिद साहब ने आवाज दी—बशीर मियाँ, मुँह क्या तक रहे है, उठकर पान-इत्र दीजिए।

घुटनो पर हथेलियाँ रखकर बशीर मियाँ उठ गए।

भीतर बडी धमा-धमी थी। कोई तीन-साढे तीन घन्टो का दबाया गया

मौन अब खुल गया था । औरतो-लडकियो की आवाजे, बच्चो की चीख-चिल्लाहट और उमस भरी गरमी की बेचैनी मे दम घुटा जाने लगा । बेगम साहिबा अलग-थलग एक गालीचे पर बैठी इत्मीनान से पान चबाती और पखा झलती हुई यूँ मुस्कुरा रही थी जैसे तमाशा देख रही हो । शमीम, जाहिदा, सलीमन और दूसरे लोगो को काम सौपकर आमना दरवाजे के पास खडी बडी बी को डॉट रही थी—ए बडी बी, बेगम साहिबा के लिए रिक्शा अभी तक नही आया ? इस घर मे नासपीटे लोग ही ऐसे है कि भले आदमियो को बुलाने मे डर लगता है । अब खडी चेहरा क्या देख रही है ? .

शमीम इत्र लगा रही थी । जाहिदा गजरे डाल रही थी और सलीमन ने एक कोने से शीरनी बॉटना शुरू कर दिया था । जाने की जल्दी सबको होती है और फिर बाल-बच्चे वाले आखिर क्या करे ? औरतो ने बच्चो को जगाना शुरू कर दिया । कई उठे, कई रोने लगे और कई तो बैठकर फिर लम्बे हो गए ।

सलीमन कितनी सुस्त है । अभी तक बीस लोगो मे शीरनी नही बटी । जितना काम नही करती उससे ज्यादा जबान चलाती है । खालिदा ने जल कर कहा—नाग-नागिन का ब्याह और ढुडिया सलमलाए । शीरनी बॉटने के लिए ही तो सलीमन मीलादो-वाजो मे आती है । अपने वालो को देखो तो मुट्ठियॉ भर-भर देती है । अरे कोई मिठाई के लिए नही मरा जाता । बात पर बात पडती है तो कहना होता है ।

सलीमन अभी दूर थी पर अन्नू की मॉ अपने दोनो बच्चो को जगाने लगी । बडी जद्दो-जहद के बाद बडा लडका अन्नू तो उठ बैठा लेकिन उससे छोटी लडकी नही उठी और नीद मे रोने लगी ।

खालिदा ने कहा—सोने दो न बहिन, क्यो जगाती हो ?

वहीदा जो अब तक चुप बैठी देख रही थी एकाएक हँसकर बोली—

—बच्चे ठहरे, न जगाने पर सुबह अपने हिस्से की शीरनी न मॉगने लगेगे ।

अन्नू की माँ ने जलती हुई आँखो से वहीदा को घूरकर देखा फिर जबरन मुस्कुराकर बोली—मेरी बेबी मीठा ही नही खाती।

बाहर बेगम साहिबा के लिए रिक्शा आ गया था। मरदाने मे अब बहुत कम लोग रह गए थे केवल मौलाना साहब दो-चार शागिर्दो से घिरे जोर-जोर से हँस रहे थे। उनके पास ही बशीर मियाँ बडा मिस्कीन-सा चेहरा लिए अदब से खडे थे।

चाय का एक दौर और चला और उसके बाद सब बाहर निकले। बशीर मियाँ मौलाना साहब के पीछे-पीछे बडे ठढे कदमो से सिर झुकाए चल रहे थे।

आमना के शौहर मौलाना साहब को थोडी दूर तक छोडने आए थे। अपने घर मे मौलाना साहब के आने और तकरीर फरमाने के लिए बहुत भीगकर उन्होने शुक्रिया अदा किया। सलाम-दुआ और मुसाफा के बाद जब मौलाना आगे बढ गए तो आमना के शौहर ने धीरे से बशीर मियाँ के कधे पर हाथ रखकर रोक लिया। जब देखा कि मौलाना काफी दूर निकल गए तो आहिस्ते से बोले—जी छोटा न करो बशीर मियाँ! खुदा-रसूल का चर्चा जैसे तुम्हारे घर मे वैसे मस्जिद मे!—फिर अपनी आवाज को और कम करके राजदाराना ढग से कहा—क्यो बेकार खर्च मे पडते हो!

*

फ़रााद

लालटेन के अजलि-भर प्रकाश मे चौधरी बाबू के हजामतवाले दाहिने-बाएँ गालो मे तीन-तीन सिलवटे सिमटी, पेशानी पर बल पडा और मुँह का जैसे स्वाद बिगड गया हो ऐसे चौधरी बाबू बोले—

—कौन हरिदास है क्या रे ? इतनी रात गए चिल्लाने के लिए क्या मेरा ही मकान मिला ?

हरिदास ने चौधरी बाबू की बात पर शायद बिल्कुल ध्यान नही दिया। अभी चौधरीबाबू ने अपना वाक्य पूरा भी नही किया था कि हरिदास ने कहा—कम्पाउडर साहब, आपको तहसीलदार ने याद किया है।

चौधरीबाबू को इस आकस्मिक याद की आशा न थी। भीतर तक झुँलस गए लेकिन कहा कुछ नही। लालटेन नीची कर ली और हरिदास के चेहरे पर अविश्वास भरी आँखों से देखकर जरा झुँझलाई हुई आवाज में बोले—क्यो क्या हो गया ?

क्षणभर चुप रहकर हरिदास ने चौधरी बाबू की ओर देखा और कारण जानने में अपनी

अज्ञानता प्रकट कर दी। चौधरीबाबू सशकित आँखो से उसे देखते रहे। रात जितनी अँधेरी थी उतनी ही सर्द भी। अलग-अलग यहाँ-वहाँ बसी झोपडियो और कुछ सरकारी क्वार्टर्स से लेकर दूर-पास की पहाडियो और जगल (जिसका सिलसिला चौधरीबाबू के क्वार्टर से दस गज के बाद शुरू हो जाता है) तक सन्नाटा फैला हुआ था जिससे लिपटी कोहरे और ठडक की चादर तनी थी। कही कोई शोर, कोई उथल-पुथल नही। केवल चौधरीबाबू ही इतनी रात गए परेशान किए जा रहे थे।

तहसीलदार का नाम लेकर हरिदास ने चौधरी बाबू को ऐसे शात कर दिया जैसे तेज आँच से उबलकर उफन उठते दूध के लिए एक फूँक काफी होता है।

लालटेन जमीन पर रख कर चौधरीबाबू भीतर जाने लगे पर भीतर के कमरे के दरवाजे ही से लौट आए। लालटेन उठाई, एक बार हरिदास की ओर देखा और उससे बिना कुछ कहे ही अन्दर चले गए।

कोई दस मिनट के बाद चौधरी बाबू एक बडा पुराना कम्बल (जिसमे से आ रही खुशबू से लग रहा था कि वह काफी समय से बद था और उसी समय पेटी से निकाला गया था) ओढे हुए निकले और कोने से छडी उठाई। हरिदास केवल आधी आस्तीन की कमीज और घुटनो तक की धोती मे था। अपने दोनो हाथ सीने पर बाँधे वह ठिठुर रहा था।

चौधरीबाबू ने वैसे ही स्वर मे पूछा—टार्च लाया है अपने साथ ?

हरिदास बोल नही पाया। शायद उसके दाँत बज रहे थे और बोला नही जा रहा था। उसने केवल सिर हिलाकर अस्वीकार कर दिया। चौधरी-बाबू ने दहलीज पर रखी लालटेन उठाकर उसकी बत्ती बढाई और बडबड़ाए—देखता हूँ, यहाँ के लोगो को साँप-बिच्छु का भी भय नही।

वह प्रश्न नही था अत. उत्तर भी नही आया। चौधरीबाबू चलने लगे, पीछे-पीछे हरिदास हो लिया। उनके हाथ की लालटेन रास्ते के बहुत थोडे से हिस्से और उन लोगो के घुटने तक को रोशनी दे रही थी जिससे दूसरी ओर पड़ रहे दोनो के लम्बे, टाँगो तक के गहरे और फिर धुँधले—काफी

धुँधले होकर पड रहे साये हिलते हुए एक-दूसरे से कट-पिट रहे थे ।

चौधरीबाबू की गर्दन के पास के कम्बल का थोड़ा-सा हिस्सा सरका और मुट्ठी-भर बर्फीली हवा घुस आई । हरिदास अपने दाँत पर दाँत जमाए चल रहा था । क्षण-प्रति-क्षण उसके मुँह से गर्म-गर्म साँस निकल रही थी । थोडा रुककर चौधरीबाबू बोले—

—तुम तो शायद काँप रहे हो । लालटेन रख लो, शायद इससे कुछ सहारा हो जाए !

बडी कठिनाई से हरिदास ने अपना बँधा हुआ हाथ खोला और लालटेन लेकर सिहरती आवाज से बोला—इस साल सर्दी ज्यादा पड़ रही है ।

सुनसान सडक मे कुछ देर केवल चौधरीबाबू की चप्पल की आवाज फैलती रही । उस जमे हुए अँधियारे को अगर कोई तोड रहा था तो वह कही पास के मकान मे से उठती किसी गोद के बच्चे की बीमार आवाज़ थी ! चौधरीबाबू ने अपनी आवाज को आवश्यकता से अधिक नर्म बनाकर मीठे स्वर मे पूछा—अच्छा हरिदास, क्या तुम वास्तव मे कुछ नही जानते कि मुझे क्यो बुलाया है ?

हरिदास से अब झूठ बोलते नही बना, धीमे स्वर मे बोला—

—नेलसनार से लोग किसी बीमार मास्टर को ले आए है । दस-पन्द्रह दिनो से बीमार है और शाम से यहाँ बेहोश पडा है । कहते है, कुछ साँसे और रह गयी है, बचेगा नही ।

और दिन होता तो शायद चौधरीबाबू कह देते—अस्पताल मे कई तरह के मरीज आते है । डाक्टर कम्पाउडर किस-किस के लिए दुख करे ।

लेकिन नेलसनार की बात सुनकर कुछ कह नही पाए । नेलसनार वहाँ से तीस-पैतीस मील पर बहुत जगली इलाके मे पडता है । स्कूल वहाँ नया-नया खुला है, कोई जाना नही चाहता । शायद कोई बहुत अभागा होगा ! चौधरीबाबू एकबारगी सिहर उठे ।

जहाँ साल के पेड़ समाप्त हो जाते है और सागौन-शीशम की क़तार शुरू

होती है वही से सडक से फिसलकर एक गली बॉई श्रोर की ढलवान मे उतर जाती है। वह आडी-टेढी सतरो मे सरकती पहाडी नदी के शायद किसी रेतीले घाट मे गुम हो जाती है। सडक दाएँ घूमकर सीधे डिस्पेन्सरी पहुँचती है। डिस्पेन्सरी बिल्डिङ्ग जरा ऊँचाई पर है और चारो तरफ़ फैले कनेर के पेडो से आधी मुँद-सी गई है। इर्द-गिर्द आबादी नही, थोडा हटकर डाक्टर का क्वार्टर भर है जो महीने मे पन्द्रह सत्रह दिनो से अधिक के लिए नही खुलता। बाकी दिनो मे डाक्टर दौरे पर होता है। डाक्टर हो या न हो वहाँ के वातावरण मे कोई अन्तर नही पडता। दवाखाने के पास रहकर भी वहॉ की फिजा हमेशा बीमार-बीमार-सी लगती है। उस क्वार्टर के पिछवाडे के आँगन मे पिछले ढाई बरसो से एक भी साडी नही सूखी। घर मे बच्चो का शोर नही, एक सन्नाटा-सा खिचा होता है जिसमे अकेला डाक्टर दिन मे ताश खेलता है और रात मे शराब पीकर बदहवास पडा रहता है।

लालटेन वाला हाथ ऊँचाकर हरिदास ने डिस्पेन्सरी का सामने वाला फाटक खोला। कम्पाउड के भीतर, दरवाजे के पास ही महुए का पुराना और मोटा पेड है। उसके घने साये से वहॉ अधेरा गहरा हो जाता है। हरिदास ने रुककर चौधरीबाबू को लालटेन दिखाई और उनके आगे निकलने की प्रतीक्षा करने लगा।

बरामदे के एक कोने मे एक पुराना और टूटे काँच वाला लैम्प जल रहा था। (शायद ड्रेसर के यहाँ से लाया गया था) उसके प्रकाश मे जितनी शक्ति थी वह सामने के चार-छै आदमियों पर पड रहा था। चौधरी बाबू ने अनुमान लगाया कि उन लोग जिसके गिर्द घिरे थे, वहाँ शायद उस अभागे मास्टर की साँस अटकी होगी। रोशनी देखकर सबका ध्यान चौधरी बाबू की ओर बँटा पर किसी ने कोई उत्सुकता या प्रसन्नता प्रकट नही की। उनमे से केवल जितेन्द्र अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ और चौधरीबाबू की ओर बढा। घेरे हुए लोगो मे तहसील आफ़िस के कुछ बाबू, एक-दो चपरासी, डिस्पेन्सरी का ड्रेसर और तहसीलदार साहब थे।

एक बॉस की ठठरी पर वह अब भी पड़ा हुआ था। (शायद इसमे ही लिटाकर उसे नेलसनार से लाया गया होगा) जितेन्द्र ने चौधरीबाबू को वहाँ क्षण भर भी रुकने नही दिया। जल्दी से उनकी बॉह पकड, एक ओर ले जाकर बोला—अनिल दा, मुझे माफ करो। तुम्हे तहसीलदार ने नही, मैंने बुलवाया था।

चौधरीबाबू ने कुछ पूछने के लिए अभी होठ खोले भी न थे कि जितेन्द्र बोला—अभी थोडी देर कुछ मत पूछो।

जिस तेजी से जितेन्द्र आया था उसी तेज़ी से वह चला गया। चौधरी बाबू आगे बढने को हुए तभी एक तेज बदबू एक ओर से आकर उनके नासा-पुटो मे समा गयी। चौकीदार ने बतलाया कि कोई तीन-चार दिनो की सडी हुई लाश किसी देहात से पोस्टमार्टम के लिए आयी है और शाम से यही पडी है। डाक्टर दौरे पर है। आपरेशन-रूम जरा हटकर एकान्त मे पडता है इसलिए साथ के कान्सटेबल ने ड्रेसर से कह-कहलवाकर केवल रात भर के लिए लाश डिस्पेन्सरी के आहाते मे रखने की इजाजत ले ली है।

चौधरीबाबू झल्लाकर बोले—ड्रेसर न हुआ, डाक्टर हो गया। कान्स-टेबल का हमने क्या ठेका लिया है ? लाश चीर घर नही ले जा सकता तो थाने मे रखे। अजीब जगह है—अजीब लोग—हर दूसरे-तीसरे दिन कत्ल-खून और लाश का पोस्टमार्टम ! डाक्टर पागल और शराबी न हो तो और क्या हो ?

जितेन्द्र ने वहाँ से आवाज दी। चौधरीबाबू ने पास ही खडे कान्स-टेबल की ओर भरपूर आँखो से देखा। वह शायद कई रातो से जागा हुआ था—आँखे लाल और हुलिया बीमार-सी। बोले कुछ नही और चुपचाप जितेन्द्र की ओर बढ गए।

मास्टर को शायद होश आ रहा था ! तहसीलदार के यहाँ से कॉफी आयी थी। उसे उनके हिदायत के साथ तहसील का एक बाबू मास्टर के होठो मे उडेलने की कोशिश कर रहा था। मास्टर का सिर जितेन्द्र की

गोद मे था और वह बडी करुणा भरी आँखो से उसे ताक रहा था ।

निकट आकर चौधरीबाबू चौक-से गए । अभागे की उम्र अधिक नही, पचीस का होगा । नाक-नक्शा सुन्दर, चेहरा बडा भोला और उसके गोरे रग की मासल चिकनाहट की जगह मैलापन ने ले लिया था । होठ पपडा गए थे और उन पर धीरे-धीरे काला रग चढ रहा था । बाँस की उस ठठरी के नीचे पुआल था और ऊपर केवल एक दरी पडी थी । उसके शरीर पर पडे कम्बल मे जगह-जगह धब्बे थे, गदा था और नजदीक आने पर खट्टी-खट्टी महक आती थी !

तारा टूटकर जितने क्षण के लिए के आकाश की छाती पर उजली रेख छोड जाता है, उतनी देर के लिए चौधरीबाबू के मन मे निशिकात का चेहरा उभरा । उन्होने अपनी आँखे मास्टर के बीमार चेहरे से तेजी से हटाई और अपने शरीर से कम्बल निकालकर जितेन्द्र से कहा—जितेन्द्र यह कम्बल उढा दो ।

एक बजे तक सब छँट गए । तहसीलदार के जाने के साथ-साथ बाबू गए और उनके पीछे चपरासी । रह गए केवल जितेन्द्र, ड्रेसर (जिसका मकान आहाते मे ही था) और चौधरीबाबू । जितेन्द्र ने उस अभागे मास्टर की जो कहानी बताई वह बडी न थी :

विनोद रायबरेली का था । उसके परिवार वाले अभी भी वही रहते हैं । वही मैट्रिक तक की शिक्षा पाई । वहाँ से सैकडों मील दूर यहाँ वह कैसे आ गया, यह जितेन्द्र भी नही जानता । कुछ लोग कहते है कि वह घर वालों से झगडकर भाग निकला ।

जितेन्द्र का परिचय बडे ही आकस्मिक ढग से जब विनोद से हुआ तब वह एक बनिये की दूकान मे काम करता था । जितेन्द्र उन दिनो वही पर एक महीने की छुट्टी पर था । परिचय के बाद के सबध ने जितेन्द्र को एक माह के बीच ही विनोद का निकट का मित्र बना दिया । विनोद ने जितेन्द्र को बताया कि वह पहले इसी जिले मे स्कूल मास्टर था डेढ साल तक नौकरी

भो की पर हेडमास्टर उससे जलता था, उसे हमेशा फँसाने की कोशिश करता था इसलिए उसने नौकरी छोड दी।

लेकिन उसकी दुर्गति शायद जितेन्द्र के हाथ और नाम के साथ ही जुडी थी। जब वह विनोद को बनिये की दूकान की नौकरी छुडवाकर, आग्रह कर अपने साथ ले आया और किसी तरह नेलसनार मे स्कूल मास्टर की नौकरी दिलवा दी तब वह क्या जानता था कि वह विनोद को जिलाने नही, मारने भेज रहा है। नेलसनार मे स्कूल नया-नया खुला था। तहसील से पैतीस मील पर पडता था। मोटर-गाडी की बात अलग, बरसात मे पैदल आना-जाना भी नही हो पाता। बरसात आते ही रास्ते से तमाम पहाड़ी नाले और नदियाँ बिफर जाती है और चारो तरफ से कटकर टापू बन जाता है। वैसे भी नेलसनार छोटा गाँव है, घने जगलो से घिरा है और निपट पिछडे आदिमजाति के लोग अधिक सख्या मे रहते है। विनोद ने वहाँ केवल बीस ही दिन बिताए थे जितेन्द्र को उसका पत्र मिला, लिखा था :

प्रिय जितेन्द्र,

मै यहाँ आ तो गया हूँ लेकिन शायद रह नही पाऊँगा। यहाँ जाने क्यो मन बहुत घबराता है। स्कूल नाम का ही है। मुश्किल से दस-पन्द्रह बच्चे आते है और दो-तीन घटो मे ही पढकर छुट्टी पा जाते है। कई दिनो से मुझे बुखार रहता है और रात भर तपता पडा रहता हूँ। किसी दिन यही मर गया तो तुम देख भी नही पाओगे और मिट्टी खराब हो जाएगी। मेरा यहाँ से तबादला करवा दो तो बडा उपकार मानूँगा।

तुम्हारा —
विनोद।

पत्र तेरह दिन पहिले का लिखा था। जितेन्द्र क्या करता ? इधर एक-एक माह मे भी चिट्ठी मिलती है। उसके तीसरे दिन ही नेलसनार वाले विनोद को बेहोशी की हालत मे अस्पताल पहुँचा गए। ..

हरिदास ने मोटी-मोटी लकडियो को इकट्ठा करके विनोद के पास जो

आग लगा दी थी, उसके बडे-बडे सुर्ख अगारो मे उजली राख की चादरे लिपट गयी थीं जलकर अपनी जगह से सरक गयी लकडियो को जितेन्द्र ने थोडा आगे ढकेलकर, कुछ अगारे तोड दिए, हाथ का कपडा आँच पर रखा और उसकी सेक विनोद की गर्दन पर देकर बोला—अनिल दा, विनोद का अपराधी शायद मै ही हूँ।

आग की छोटी-छोटी लपटो और सुर्ख आँच का साया चौधरीबाबू के चेहरे पर नाच रहा था। उनके चेहरे के भाव जानना कठिन था, वह केवल जितेन्द्र और विनोद को ताकते रहे।

विनोद बेहोश पडा था। उसकी कितनी साँसे और रह गई है, चौधरी बाबू यह नही जानते। माँ बाप से झगडकर वह यहाँ परदेश मे पडा है। यहाँ उसका कोई नही—सबकुछ बनकर केवल जितेन्द्र खडा है।

एकाएक चौधरीबाबू के भीतर से एक गोला-सा उमडा और गले तक आकर अटक गया—उनके बेटे निशिकान्त के भाग्य मे शायद इतनी देख-रेख भी न रही हो। इसी तरह एक दूर देहात मे निशि बिना दवा-पानी के मर गया और चौधरीबाबू यहाँ के लोगो को दवाएँ बाँटते रहे। किसी को नजर मे चौधरीबाबू कुछ भी बन गए हो लेकिन निशिकान्त के मरने के बाद चौधरीबाबू से उनकी पत्नी नफरत करने लगी। उनकी नजर मे चौधरी-बाबू हत्यारे थे जिन्होने निशि की माँ के रोने-जिद करने पर भी पैसे की लालच मे इकलौते बेटे निशि को अपने से दूर अकेले देहात मे भेज दिया।

—अनिल दा, जितेन्द्र बोला—यहाँ से बीस मील पर जो डाक्टर है उसे बुलाने के लिए चपरासी गया है। वह सुबह से पहिले नही लौटेगा, यह मै जानता हूँ। तुम्हे मुझपर एक उपकार करना होगा अनिल दा। कुछ ऐसा उपाय करो कि डाक्टर के आने तक कम-से-कम इसकी सास न टूटने पाए। विनोद यदि मुझे क्षमा किए बिना मर गया तो ..। कहते-कहते जितेन्द्र का स्वर फँस गया। चौधरीबाबू ने अपना हाथ उसके कधे पर रखा और उठ खडे हुए—

—लोग कहते है जितेन्द्र, मैने जीवन भर सबका उपकार किया है।

निशि की माँ समझती है कि मैंने उसके बेटे को मार डाला। सोचता हूँ, तुम्हारा कितना उपकार कर सकूँगा।

निमिषभर के लिए चौधरीबाबू रुक गए। लैम्प के धुँधले प्रकाश मे उनका चेहरा स्पष्ट नही हो सका, केवल जितेन्द्र ने चौधरी बाबू के स्वर का गीला हो आना ही देखा।

—पन्द्रह बरसो से कम्पाउँडरी कर रहा हूँ। डाक्टर नही है और यह पूरी डिस्पेन्सरी तुम्हारे आगे खुली है। तुम शायद विश्वास न करो लेकिन मै सोचता हूँ कि विनोद और मेरे निशि मे अधिक अतर नही। शायद मेरे निशि के भाग्य मे कोई जितेन्द्र नही था, नही तो वह ऐसे नही मरता।

कह कर चौधरीबाबू डिस्पेन्सरी रूम की ओर बढे। सिमेंट के पक्के फर्श पर गिरे दो बूँद आँसुओ मे कौन चौधरी बाबू का है और कौन जितेन्द्र का, यह नही जाना जा सका। डिस्पेन्सरी सारी रात खुली रही।

काजल-सी रात के वहाँ के वातावरण मे एक कोने से सडी हुई लाश की बदबू उठ रही थी। आग ठण्ढी न हो इसलिए विनोद के जिस्म के पास बैठा जितेन्द्र अगारो पर पड रहे राख की चादर हटा रहा था। कुछ आगे —आग का ही सहारा लेकर कान्सटेबल सो रहा था। शायद आसपास की सारी हवा आज रात महुए के पेड मे ही सिमट आयी है—सारी रात महुओ के बादामी फूल टहनियो से टूटते और गिरते रहे।

घाट की तीसरी सीढी पर आकर जिन्तेद्र ने गीली धोती निचोडी और आँचल नगे कधे पर डाल लिया। तहसील के लगभग सभी कर्मचारी और गैर-सरकारी लोग बारी-बारी से नहा रहे थे। चौधरीबाबू का नहाना खत्म हुआ तो गीले बदन पर तौलिया डाले जितेन्द्र के पास आकर खडे हो गए। जितेन्द्र जैसे बिल्कुल टूट गया था बडे निराश और थके हुए स्वर मे बोला —अभाग्य लेकर मरना भी तो भाग्य है अनिल दा ? ऐसी मौत पाकर विनोद जितने लोगो की सहानुभूति ले गया है, वह देखर मै ईर्ष्या करता हूँ।

जितेन्द्र का स्वर जाने कैसे होने लगा था, अपना मुँह फेरकर उसने घाट

की ओर कर लिया। चौधरीबाबू के पास जितेन्द्र को कहने के लिए शब्द नही, वह अधिकतर सुबह से चुप ही है।

कल सारी रात डिस्पेन्सरी खुली रही। जिस डाक्टर की प्रतीक्षा मे विनोद साँस अटकाए था, वह सुबह नौ बजे के बाद उस समय आया जब विनोद की साँस ही चुक गयी थी। चौधरीबाबू का पन्द्रह बरसो का अनुभव लाख कोशिशो के बाद भी विनोद को कुछ घन्टो की साँस और नही दे सका और सुबह होते-न-होते वह जितेन्द्र की गोद मे मर गया।

जितेन्द्र बोला—सुनता हूँ, तुम्हारे विरुद्ध डाक्टर ने शिकायत कर दी है कि तुमने केस खराब कर दिया। प्राइवेट-प्रेक्टिस करने का आरोप भी तुम पर लगा रहे है। अनिल दा, और किसी के सामने आ सकूँ या नही लेकिन तुम्हारा अपराधी होकर मै जी भी नही पाऊँगा। जितेन्द्र रोने लगा।

चौधरी बाबू ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा और अपनी छलछला आती आँखो को दो-एक बार झपकाकर जितेन्द्र के काँधे पर अपना हाथ रख दिया, बोले—मेरी शिकायत की बात जाने दो जितेन्द्र। मै जानता हूँ, तहसीलदार मुझे निकालना चाहता है। मै तो तुम्हारी भावुकता से डरता हूँ।

लोग तब तक आ गए थे। नहाकर लौटने वालो पक्ति मे जितेन्द्र आगे था, पीछे चौधरीबाबू और तब सारे लोग। उतरी हुई उदास शाम के चेहरे पर बिखरती हुई स्याही मे जो शोर घुल रहा था वह पुराने और घने पेडो वाले परिन्दो का था।

दूसरे दिन ग्यारह बजे तक डिस्पेन्सरी नही खुली। डाक्टर दौरे से वापस नही आया था अत तहसीलदार के पास डिस्पेन्सरी की चाबी लेकर हरिदास आया। चौधरीबाबू का मकान खाली था। कुछ मिलने के नाम पर जितेन्द्र के नाम का एक पत्र लोगो ने पाया, लिखा था .

जितेन्द्र,

तुम्हे सभवत. स्मरण हो, मैने तुमसे उस रात कहा—लोग कहते है मैने जीवन भर सबका अपकार किया है। निशि की माँ समझती है कि मैने

उसके बेटे को मार डाला। सोचता हूँ तुम्हारा कितना उपकार कर सकूँगा।

तुम मुझे उस समय से जानते हो जब मै पॉच-छ बरस पहिले यहॉ आया था। निशि के बाद बेटे की तरह मैंने तुम्हे ही जाना है इसलिए उस प्रेम को याद कर तुमसे विश्वास करने को कहता हूँ—

विनोद का केस मैंने जानबूझकर खराब कर दिया। मै चाहता तो इतनी जल्दी वह न मरता। मैंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया हे और यहॉ से बिल्कुल कगाल होकर जा रहा हूँ।

तुम्हारा,
—अनिल दा।

कफ़न चाहिए

बारिश की सील गई रात मे अचानक जो व्यक्ति फटे-चिथे कपडे, बेतरतीबी से उग आयी दाढी, सुर्ख आँखे और ठिठुरता हुआ जिस्म लिए आकर खडा हो गया, वह अपनी भिखारी-जैसी हुलिया से भी पहले मुझे प्रभावित नही कर पाया। मन मे बडी खिजलाहट-सी पैदा हुई कि रात मे भी इन भिखमगों से छुटकारा नही मिलता। भला यह भी कोई माँगने का वक्त हुआ ?

दोपहर से लगातार झडी लगी हुई थी और इस बीच थोडी देर के लिए भी मेह नही थमा। हालाँकि अभी रात के नौ ही बजे थे लेकिन पूरी गली यहाँ से वहाँ तक सुनसान होकर दम साधे पडी थी। गली का इकलौता लैम्प-पोस्ट भी (जो मेरी पैदाइश के पहले का होगा—खभे की लकडी भीतर से सड गई है, आधी हो रही है) आज अँधेरे मे गुम हो गया था। ऐसी रातो मे पास-पडोस के डबरो से लगातार उठनेवाली मेढको की आवाज वाता-वरण को और भारी बना देती है और अच्छा-

भला जो न जाने कैसी उदासियो मे घिर जाता है।

उस क्षण मन मे दया-मया नही जगी। पहले तो थोडी देर वह बाहर खडा भीगता रहा फिर दहलीज के पास आकर खडा हो गया और बिना कुछ कहे रोने लगा। आहट सुनकर अम्मी आयी और उनके पीछे-पीछे मेरी छोटी बहिन अनीस। अनीस शायद उसे पहिचानती थी। जरा रोशनी मे उसका चेहरा आया तो अनीस बोली—अरे, यह तो जयलाल है।

मै और अम्मी आश्चर्य से अनीस की ओर देखने लगे। अम्मी ने पूछा—तू इसे जानती है?

अनीस बोली—रिक्शा चलाता है। कई बार इसके रिक्शे मे स्कूल-आई-गई हूँ।

वहाँ पर जयलाल का परिचय देना उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करना था। उसका सुबकना और तेज हो गया। उसने बतलाया कि उसका एक चार बरस का लडका था जो घर मे मरा पडा है। पास मे पैसे नही और यहाँ अपनी जात-बिरादरी वालो को वह नही जानता। ऐसी भरी बरसात मे किसके पास जाए, क्या करे। उसको रिक्शा वाले मालिक से सिर्फ एक रुपया मिला। अब उसे कुछ रुपये और चाहिए ताकि कम-से-कम बच्चे के लिए कफन का इतिजाम हो सके।

जितनी उपेक्षा समेटे मै बैठा था वह जयलाल की बात से नही रह पायी। किताब मैने बन्द कर दी और हमदर्दी भरी नजरो से उसकी ओर देखा। अनीस और अम्मी की आखो मे बडी पीडा सिमट आयी थी, बस चुपचाप ताके जा रही थी।

जयलाल बोला—बस, दो रोज की बीमारी से मेरे हीरे-जैसे बच्चे ने दम तोड दिया। हाय, मेरा बेटा। अरे, राममनोहर, तू कहाँ चला गया रे....

कमबख्त, आज कलेजा नोच लेगा। एक तो ठडक-भरी बर्फ-सी रात और उस पर इतनी करुणा और इतना विलाप। कुछ क्षणो के लिए किसी के होठो से कुछ नही फूटा अम्मी अपनी पलके पोछ रही थी।

मेरी कल्पना मे जयलाल का घर उभरा। किसी अँधेरी या गन्दी गली मे एकाध माटी का झोपडा है जिसकी आधी-आधी दीवारो मे पानी चढ गया है। कमरे की सीलन मे बिसाध-सी गध है। कही कही किसी कोने मे जयलाल के अभागे बच्चे की लाश एकाध चादर मे लिपटी पडी है और बाहर मेह पड रहा है—पिछले कई घटो से लगातार भहरा-भहराकर गिरने वाली बरसात।

जाने जी कैसा होने लगा। जितनी करुणा जयलाल के लिए मन मे नही जागी, उससे अधिक जी उस अभागे के लिए भर गया जो असमय मे एक सील भरी कोठरी मे मरकर बेकफन पडा था और उसका बाप चन्दा इकट्ठा कर रहा था।

अम्मी भीतर चली गयी और मुझे बुलवाया। कुछ बरस पहले अम्मी ने भी अपना एक बेटा खोया था, शायद यही वजह हो कि जयलाल के दुख को वह मुझसे और अनीस से ज्यादा अच्छी तरह समझ रही थी। आँखो के साथ उनकी आवाज़ भी भीग गई थी। अनीस एक कोने मे यूँ गर्दन लटकाए खडी थी जैसे जयलाल के बेटे की मातमपुर्सी की जिम्मेदारी उस पर ही हो।

अम्मी बोली—मेरे पास चार रुपयो से ज्यादा नही। और तुम्हारी तन्ख्वाह मिलने मे अभी कुछ दिन बाकी है। इसे दे दोगे तो घर-खर्च का क्या होगा ?

बात सच थी। चार रुपयो मे छह दिन घर चलाना यूँ भी असम्भव था। अब जयलाल को उसमे से क्या दिया जाय, क्या न दिया जाय ? कोई और बात होती तो टाल भी दी जा सकती थी लेकिन उसे तो अपने बेटे के लिए कफ़न चाहिए था न। देर तक वहाँ पर खडा मै बार-बार यही सोचता रहा कि अपने बेटे के कफन की बात कहकर जयलाल ने हम लोगों के मन मे क्या पैदा की—दया या दहशत ?

जयलाल के पास आकर मैने पूछा—यहाँ के बाद और लोगो के यहाँ भी जाओगे ?

—कहाँ जाऊँगा ? इस मुहल्ले मे और कौन है ? जो मेरी मदद कर सके ?

याद आया और मुझे हँसी आयी कि पूरे मुहल्ले मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक केवल निचले तबके के लोग रहते है—छोटी-मोटी दूकानवाले, बोझा ढोनेवाले, मामूली नौकरियाँ करने वाले और कुली धोबी आदि। वहाँ अकेले मे ही बाबू वर्ग का जयलाल को नजर आया और उसने हमे ही इस लायक समझा कि उसकी मदद करेगे। शायद जयलाल नही जानता कि मेरे मकान के सामने रहने वाला धोबी दिन भर मे सात आठ रुपयो का काम करता है और अभी भी वह देना चाहे तो पाँच रुपये आसानी से निकालकर दे सकता है।

मुझे बडी खुशी हुई कि जयलाल ने, मै जिस वर्ग का हूँ, उसकी इज्जत रख ली। उस खुशी को दबाते हुए मैने पूछा—

एक बात बताओ जयलाल, तुम्हे तो कफन चाहिए न। अगर रुपये न देकर किसी दूकान से कफन का कपडा दिलवा दूँ तो क्या तुम्हारा काम न चल जायगा ?

जयलाल ने रुककर मेरी ओर देखा फिर थोड़ी देर सोचने के बाद उसने मेरी बात स्वीकार कर ली।

मै समझता था कि जयलाल अधिक से अधिक दो-तीन रुपयो की उम्मीद लिए मेरे पास आया होगा। पूरे कफन के इन्तजाम की बात सुनकर बेहद खुश होगा और मुझे ढेरो दुवाएँ देगा लेकिन वह मुँह लटकाए चुपचाप अँधेरे मे खडा रहा। मन मे मैने सोचा कि अभी भले दुख के कारण वह आभार स्वीकार न करे। भले अभी धन्यवाद न दे लेकिन आज के बाद इस बात की चर्चा वह कई लोगो से करेगा कि मैने उसके बच्चे के लिए कफन का इन्तजाम अकेले कर दिया।

जिस सेठ के यहाँ कपडे की मेरी उधारी चलती थी, उसके नाम चिट्ठी लिखते पलभर के लिए मै रुका। उसके रोकड मे मेरे नाम अस्सी रुपये चार आने चढे थे और दो महीनो से एक पैसा नही दिया गया था। सो

चिट्ठी मे जयलाल की बदनसीबी की बात बडे ही प्रभावशाली ढग से लिख-कर मैने उसे दी, दूकान का पता समझाया और उसकी समझ मे जब कुछ ठीक से न आया तो अपने छोटे भाई अशरफ को (जिसका दूसरे दिन से इम्तहान था और जो अपनी किताब से पल भर के लिए भी हटने को तैयार नही था) किसी तरह बहला-फुसलाकर जयलाल के साथ कर दिया।

अशरफ जब लौटकर आया तो छाता लगाने के बावजूद वह काफी भीग गया था। मै उसकी प्रतीक्षा कर रहा था, दहलीज पर रोककर पूछा —क्यो, कफन का कपडा दिला दिया ?

—हाँ।

—कौन सा ?

—सफेद लट्ठे का।

मैने उधर सडक की ओर अँधेरे मे थोडा देखकर पूछा—

—जयलाल साथ नही आया ?

—नही, अशरफ ने कहा—वह उधर से ही घर लौट गया। मुझे अपने प्रश्न पर स्वय लज्जा आयी। अपने बेटे की लाश छोडकर वह कफन के लिए भटक रहा था। अब यहाँ फिर से आने की जरूरत ही क्या थी ? मैने पूछा—कितना लिया ?

—पाँच गज, कहकर अशरफ ने सात रुपये बारह आने का बिल मेरी तरफ बढा दिया।

छाता एक कोने मे पानी नितारने के लिए टिकाकर अशरफ अन्दर हो गया तो मै सिटकनी लगाने के लिए दरवाजे के पास आया। बरसात की बूँदे अब हल्की और कम हो गयी थी। पास ही मुद्दत से अधबने पडे मकान, ईंट-मलबे के ढेर और बरसो से पडी-पडी गल रही शहतीरों मे से कई तरह की आवाजो के साथ किसी बरसाती कीडे की तीखी सीटी और भी सन्नाटे को खीचने लगी। पानी भरे हुए वाटर-प्रूफ जूते पहने कोई गली मे से अजीब आवाज करता गुजर रहा था—चपर चूँ....चपर चूँ..

किसी ने बताया कि सुबोध की बीवी बीमार है सो उसे देखने के लिए चौथे रोज मै सुबोध के यहाँ गया था। सुबोध जिन्दादिल आदमी है—भीतर और बाहर साफ। दुख को लेकर कुढने का स्वभाव उसका नही। चुपचाप झेलकर हँसते जाना ही वह जानता है। सुबोध की बीवी शायद न बचेगी। डाक्टर दवाएँ लिखता है लेकिन खरीदी नही जाती। सुबोध ऐसा क्यो करता है।

मै चाहता हूँ कि सुबोध को टटोलूँ लेकिन वह शायद अपने को उघडने नही देगा। हताश होकर जब मै लौटने लगा तो दरवाजा के पास ही एक बुढिया ने आकर हम लोगो पर दुआओ की बौछार शुरू कर दी। देखने मे वह माँगने वाली जैसी नही दिखती। साडी अपेक्षाकृत साफ। पाँव मे मोटे-मोटे चाँदी के कडे और कान मे सोने के छोटे-छोटे फूल।

उसका किस्सा मै जानता हूँ। मेरे घर आकर कई बार सुना गयी है कि वैसे तो वह अच्छे-भले घर की है लेकिन भाग्य ने उसे भीख माँगने पर मजबूर कर दिया है। उसकी बात की सचाई के विषय मे मैने कभी नही सोचा।

सुबोध इन लोगो से बहुत बचता था। उस पर दुआओ का भी असर नही होता। लाख उसके गिडगिडाने पर भी सुबोध ने उसे चलता कर दिया। मै सुबोध से कुछ बाते कहने मे डरता हूँ। भावुकता से उसे बेहद नफरत है। जीने के लिए वह हर एक से बुद्धिवादी बनने की माँग करता है।

झिझकते हुए मैने कहा—कुछ तो दे देना था।

सुबोध हँसने लगा—सुनता हूँ, पाकिस्तान मे मार्शल-लॉ लगने के बाद भीख माँगने वालो के लिए भी सजा तय कर दी गई है। अगर यह सच है तो मै पहला आदमी होऊँगा जो बेहद खुश होगा। भीख माँगने के आजकल पचास ढग निकल गए है। इस बुढिया को तुम क्या समझते हो? अच्छी-खासी धरी है और पचास तोले के कडे पहने है। कुछ नही तो मजदूरी कर सकती है। लेकिन नही, इससे बडा आराम का व्यवसाय और क्या होगा? उस दिन जो कुछ लडकियाँ अपने को बाढ-पीडित कहकर मुझसे

एक रुपया ले गई उनमें से एक को मैंने देखा उसके दूसरे दिन ही किसी आदमी के साथ बैठी ठाठ से सिनेमा देख रही थी।

मैं क्या कहता ? वह सब मैं जानता हूँ लेकिन फिर भी भिखारियो को गोली मार देने की बात नही कर सकता।

सुबोध ने जरा रुककर कहा—आज सुबह एक महाशय आए। कहने लगे कि उनका बच्चा मर गया है, कफन के लिए पैसे नही। जाने क्यो हमदर्दी की भावना दिन-ब-दिन मै खोता जा रहा हूँ। किसी भी नये व्यक्ति पर विश्वास नही कर पाता। उसे मैंने डॉटकर भगा दिया। बाद मे नौकरानी ने बताया कि उसके कोई बच्चा तो क्या, बीवी तक नही।

मै मुँह खोले सुबोध को ताकता रह गया। जी मे एक बार आया कि बता दू—मेरे पास भी तीन-चार दिनो पहिले एक अभागा आया था। हालाँकि रुपये देने की स्थिति मे मै नही था लेकिन मैंने उसे कफन दिलवा दिया। आखिर इन्सानियत भी तो कोई चीज है। लेकिन लगा कि कहना ठीक न होगा। या तो सुबोध मेरी भावुकता का मजाक उडा देगा या शायद यह ख्याल करे कि एक आदमी के लिए पाँच-सात रुपये मैंने क्या खर्च किए, उस बात का ढिढोरा पीट रहा हूँ। मै चुप रह गया।

सुबोध के यहाँ से निकलते ही वकील साहब शर्मा मिल गए। और अपने साथ घसीट लिया। शर्मा बिचारे अच्छे-भले शायराना तबीयत के आदमी थे। वकालत का पेशा उनसे चलता नही, किसी तरह निभा-भर रहे थे। रास्ते भर अपने केसेज, क्लाइट्स और मजबूरियो की चर्चा करते रहे।

शर्मा साहब के मकान के आहाते के अन्दर आते ही देखा दरवाजे के परदे से लगी शर्मा साहब की पत्नी खडी थी और सीढियो के पास लट्ठे की सफेद, नयी और धूप मे चमकती हुई कमीज पहने कोई खडा हुआ था।

सहसा शर्मा साहब की पत्नी की निगाह हम लोगो पर पडी। परदा छोड तेजी से वह आगे आयी, सामने खड़े आदमी की हथेली पर कुछ रखा और भीतर चली गयी।

निकट आकर मैंने देखा तो आँखें खुली-की-खुली रह गयी—वह जयलाल था। लट्ठे की नई कमीज पहने था, दाढी-मूँछ बाकायदा क़टी-छँटी और करीने से सँवरे हुए उसके बालो से तेल चुआ पडता था। बाएँ हाथ मे पडी कुछ चवन्नियो तथा अठन्नियो को गिनता हुआ जब वह मेरे पास से गुजरने लगा तो एक पल के लिए उसकी आँख मुझपर टिकी पर दूसरे ही क्षण अपनी पलकें पैसो पर गडाए उसे फिर से गिनता हुआ ऐसे निकल गया जैसे मुझे पहिचानता ही न हो।

वह सब देख और समझकर मैंने सोचा कि जयलाल को आज भी कफन चाहिए था!



इज़्ज़त का सवाल

नही, इला मै अब वह सब कहाँ था ? वह बात-बात मे फूटता-बिखरता उल्लास, वह बेधडक-बेखौफ चाल (कि दामन कही, आँचल कही) और वह उन्मुक्त हँसी । किसी गहरी झील की बेपरवाह लहरो से हर लम्हा काँपने-थरथराने वाली कगार की घास-सी झूमती उसकी डूबी-डूबी और ख्वाबीदा आँखे आज मुझे कनेर के फूल की याद दिलाती है । अक्सर कनेर के किसी धूल-लोटते फूल को उठाकर मैंने उसकी पखुरियो तक झाँका है और सोचने लगा हूँ कि अपने आँखो की ओट इतनी ढेर-सी पीलाहट छिपाए कनेर उजला-उजला क्यो खिलता है ?

मेरे साथ चलती इला अब मेरी ओर पलट गई है और मुझे अपनी ओर एकटक ताकता देख घबराकर गर्दन मोड लेती है और सामने सडक जहाँ खत्म होती है वहाँ कही आँखें अटका कर व्यग से हँसने लगती है—मुझे इतने गौर से देख रहे हो, मुझ पर तरस खाओगे क्या ?

मै जवाब नही दे पाता । इला की किसी बात का जवाब मै कभी नही दे पाया और हर ऐसे मौको पर मेरा मजाक उडाती हुई इला ने मुझसे कहा है कि जब मुझे एक लडकी से बहस करना नही आता तो मै वकालत क्या करूँगा । मुझे जब कुछ भी नही सूझता तो मैं बेवकूफो की तरह पूछा बैठता हूँ—इला, श्यामलाल से तुम्हारी बनती है ?

—बनना नही, बनना कैसा होता है, समझाओ भला । मै इला को क्या समझाऊँ ? आज भी अपने स्वाभिमान को वह कम करना नही चाहती। बातो मे वह कभी नर्म नही रही, लेकिन अब तो कड़वी हो गई है । बहस करने बैठती है तो जिद करने लगती है ।

साथ-साथ चल रही यह पत्थर मे दब-पिसकर उघडी दूब-सी इला नही, आज से तीन बरस पहिले की इला मेरे सामने आकर खडी हो जाती है । इससे पहिले कि मै उससे कुछ पूछूँ एक प्रश्न आकर अड जाता है—

तुम कब आए ?

मै चौक जाता हूँ कि इला क्या पूछ रही है ? इस प्रश्न का उत्तर तो मैंने आध घटा पहिले ही इला को दे दिया था । थोडी देर पहिले जब मैं मालवीय मेडिकल स्टोर्स के सामने खडा था और इला को अकस्मात मेडिकल स्टोर्स से कोई दवा लेकर निकलते देखा तो पहिले अपनी आँखो पर विश्वास नही हुआ । इला यहाँ कहाँ ?

तीन बरस पहिले जब मै बालाघाट मे नया-नया वकालत पासकर आया था, इला का पडोसी होकर दस महीने तक मुझे रहना पडा । इसी दस महीनो के दौरान मैंने इला और उसके परिवार वालो को जाना था । उस मकान के बदलने के कोई पन्द्रह दिनो बाद मैंने सुना कि इला बालाघाट छोडकर कही चली गई । उसके जाने के बाद (जैसा कि अक्सर होता है) कई तरह की बाते कही-सुनी गई । इला किसी प्रायमरी स्कूल मे मिस्ट्रेस थी और उसका बडा भाई किसी दफ्तर मे क्लर्क था । उन दोनो भाई-बहनो मे कितना प्यार था यह तो मैंने नही जाना लेकिन इला भाई के साथ ही रहती थी। दो जनो की कमाई थी सो घर मे रेडियो भी था और

अच्छा रहन-सहन भी। अपने रिश्तेदारो से उनका कोई सबध नही था (क्योकि उनमे से अधिकाश सबध के लायक ही न थे) स्वभावत. ही वे लोग इला और उसके परिवार वालो से जलते थे। हालॉकि स्कूल के वक्त के अलावा इधर-उधर दिन मे भी मैंने उसे कभी नही देखा लेकिन सुना कि उसे किसी का गर्भ रह गया था इसलिए बालाघाट छोडना पडा।

कोई एक साल बाद मुझे भी बालाघाट छोडना पडा और उन तीन बरसो मे इला का कोई पता नही चला था। उसे अकस्मात उस दिन मालवीय मेडिकल स्टोर्स के सामने देखकर यूँ लगा जैसे मैं इला को ढूँढने के लिए ही इधर-उधर भटक रहा हूँ। तेज कदमो से उसके निकट जाकर मैंने आवाज दी—इला।

इला ने लौटकर देखा—केवल क्षणभर के लिए मुझे देखा। फिर बिना रुके आगे बढ गई। मैंने अपनी चाल और तेज कर दी और उसके पास पहुँचकर कहा—क्यों मुझे नही पहिचानती ?

—पहिचानती हूँ, इला ठढे ढग से बोली—तुम यहॉ कहॉ आए हो ?

मैंने कहा—पहिचानती हो तो पुकारने पर भी क्यों नही रुकी ? मेरी बात का जवाब दिए बिना ही इला ने फिर अपना प्रश्न दुहरा दिया—तुम यहॉ कहाँ आए हो ?

—मैं तो करीब सात माह से यही हूँ। यही प्रैक्टिस करने लगा हूँ, मैंने कहा और इला के साथ-साथ चलने लगा। मेरा साथ चलना और मौन ही सभवत इला को अपने बारे मे प्रश्न लगा हो, पूछने के पहिले ही कहने लगी—मैंने तो श्यामलाल से ब्याह कर लिया है।

—कौन श्यामलाल ?

—तुम उसे नही जानते, यहॉ सरकारी अस्पताल मे कम्पाउडर है।

बस, एक-दो और बातो के बाद सिलसिला खत्म हो गया और उसके बाद से चुपचाप चल रहे हैं। मैं अलग सोचता चल रहा हूँ और इला अलग। सोचकर हँसता हूँ कि मेरे बार-बार गौर से देखने के कारण ही शायद इला घबराकर बेसिलसिले के प्रश्न करने लगी है।

मैं इला की ओर देखकर हँसते हुए कहता हूँ—मैंने बताया न, बाला-घाट से आकर मैंने यही प्रैक्टिस शुरू कर दी है।

चौराहा अब पीछे रह गया था। जिस गली को पकडने इला बढ रही है उसके पास से तेलियो का मुहल्ला शुरू हो जाता है। तेलियो के शायद बहुत बच्चे होते हैं। हर घर के सामने एक-दो नग-धडग धूल मे खेल रहे है और टाट के परदे की ओट से कानो मे बालियाँ पहिने चीकट-मैली इजार वाली दो-तीन जवान तेलिने हम लोगो की ओर देख रही है। साफ महसूस करता हूँ कि इला को असुविधा हो रही है। मुझसे मिलकर खुशी भी नही हुई यह भी जानता हूँ फिर भी इलाको पूरी तरह जाने बिना आज हटूँगा नही।

सडक से जरा हटकर एक बद घर के पास इला रुक गई और मेरी ओर पलट कर कहती है—यह लो, मेरा घर तो आ गया। वह रुकना, पलटकर मुझे बताना और घर आने की खबर देने का टोन मैं समझता हूँ। इला खोखली हँसी हँस रही है। बेमानी और बेबात की हंसी जिसका मत-लब केवल चुप्पी को किसी तरह तोडना भर है। इला को देखकर पास के एक मकान मे बैठी कोई जवान-सी औरत एक बच्चा गोद मे लिए हम लोगो की ओर बढ रही है जिसे बडी ममता-भरी आँखो से ताकते देखकर मैं आश्चर्य भी प्रकट नही कर पाता और इला ललक कर, बच्चे को अपनी गोद मे ले, उसके बीमार गालो को कई बार चूमकर कहती है—यह मेरी बेबी है। हेमा बेटी, अकल को टा-टा कर दो। फिर उसके नन्हे हाथ को मेरी तरफ उठा, अपने हाथ से हिलाती हुई बच्ची-सी तोतली जबान मे कहने लगती है—टा-टा टा-टा

बच्चो से मुझे कतई लगाव नही लेकिन ऐसे अवसरो पर चुपचाप मुँह देखते खडे रहना अशिष्टता होती है न। अग्रेजी की एक कहावत याद आती है—लव मी, लव माई डाग। मुस्कुराकर आगे बढता हूँ और सहम रही बेबी के गाल (जो बिल्कुल प्यारे नही थे) पर प्यार की हल्की चपत लगा कर कहता हूँ—अभी हम अपनी हेमा से मिले भी नही, क्यों बिटिया ?

भला टा-टा कैसे करोगी ? देखा, तुम्हारी ममी हमे टालना चाहती है ।

वह बात हालाँकि मजाक के ढग पर ही निकली लेकिन उसके भीतर की सचाई को इला जानती थी शायद इसीलिए हसकर कहती है—अरे, नही-नही । भीतर आओ, चाय पीकर जाना ।

भीतर आकर देखता हूँ—इला के उस घर मे बस एक ही कमरा है। एक कोने मे रसोई का सामान और उसके पास से पीपे, कोयले का बोरा और घर-गिरस्ती की छोटी-मीटी चीजो का सिलसिला एक ओर रखी खाट तक चला गया है । खाट के पास एक खुर्री मेज़ पडी है जिसमे घटिया सीरीज के एक दो सस्ते नावेलो से लेकर हजामत का सामान, घिसा हुआ टूथ-ब्रश और बूटपालिश की डिबिया तक पडी थी । पास के दीवर पर सस्ते फोटोग्राफर से खिचवाई फोटो फ्रेम मे मढी है । उस तस्वीर मे पिचके गालों और मोटे होठो वाले एक आदमी को देखकर (जो फोटो मे भी अच्छा नही दिख रहा था) विश्वास हो गया कि वही श्यामलाल होगा । इला की ओर देखकर मै पूछता हूँ—अच्छा इला, अपनी शादी की बात तुमने किसी को क्यो नही बताई ?

इला स्टोव जला रही है । शायद तेल नही आ रहा है पिन सूराख मे डाल माचिस की एक सलाई जलाकर मेरी ओर देखने लगती है—तुमसे किसने कहा कि मैने ब्याह किया है ।

इला भूल गई कि थोडी देर पहिले स्वय उसने मुझे बताया था लेकिन उससे कहता नही । शायद कोई नई बात मालूम होगी । आश्चर्य प्रकट करते हुए इला के मुँह की ओर ताकने लगता हूँ—ब्याह नही किया तो फिर

—मै श्यामलाल की रखैल हूँ ।—क्षण-भर मेरी ओर अपलक देखकर इला कडवे ढग से हँस देती है—सच कहूँ तो उससे ब्लैक-मेल करके मै उसकी बच्ची की माँ बनी हूँ । लेकिन मेरा भाग्य देखोगे ? ब्लैक-मेल करके मै खुद फँस गई । मै जानती हूँ मेरे बालाघाट छोडकर चले आने के बाद मेरे बारे मे लोग यह कहने लगे है कि मै किसी का गर्भ लेकर भागी हूँ । मै और किसी को नही, तुमसे विश्वास करने को कहती हूँ—बालाघाट छोडने

तक मै पुरुष के शरीर को नही जानती थी। आज तुम्हारे सामने कहने मे मुझे लज्जा भी नही लगती कि जिन दिनो बालाघाट मे तुम्हारे पडोस मे रहती थी, कुछ दिनो तक तो चाहा कि तुमसे रोमास करूँ लेकिन बाद मे, बुरा न मानना, मुझे लगा कि तुममे अकड कुछ ज्यादा है और अपने को तुम कुछ समझते हो। तुम भी जानते हो यह बात खुद मेरे स्वभाव मे है सो मै तुमसे प्रिजुडिस होकर इधर-उधर तुम्हारे विरुद्ध बकती रही और तुमसे रोमास की बात जहन से ही निकाल बैठी।

इला दुखते हुए ढग से हँसने लगी—तुम्हे याद होगा अपने पिता के शराब पीने और एक नीच जात की औरत रख लेने की बात को लेकर हमारे यहाँ कितना झगडा मचा रहता था। दरअसल मेरे पिता ने अच्छी सोसाइटी नही देखी। अच्छे-भले लोगो मे उनका उठना-बैठना नही हुआ। और कुछ नही तो उन्हे हम लोगो की इज्जत का ख्याल करना चाहिए था। अपनी हरकतो से उन्होने हमारी इज्जत की मटियामेट करना शुरू कर दिया था और सभ्य-समाज मे बेठने-उठने लायक नही रखा। वे अर्जीनवीस थे लेकिन भैया की नौकरी के बाद उन्होने काम करना ही छोड दिया था। अक्सर उस औरत के घर वह दिन-रात पडे रहते या शराब पीकर सिनेमा-हाउस के किसी पान की दूकान मे बैठे पिक्चर छूटने पर निकलने वाली औरतो को देखा करते।

भैया या मेरी गैरहाजिरो मे भाभी को डरा-धमकाकर पैसे लेने ही वह आते थे। तुम्हारे सामने ही तो कई बार भैया और उनसे मार-पीट तक हो गई। मै झूठ नही कहूँगी, जिस दिन के झगडे मे पूरा मुहल्ला हमे थूकने लगा था और तुम बीच-बचाव करने आये थे उस दिन मैने उन्हे सचमुच धक्का दे दिया था। मै क्या करती गुस्से से अधी हो गई थी। हमारे लिए उन्होने कुछ नही किया था। अपने जीवन मे न तो उन्होने दौलत कमाई न इज्जत। जानते हो, उन्होने उस दिन सब लोगो के सामने क्या कहा था?

कहते-कहते इला की आवाज़ भर गई थी। क्षणभर रुककर उसने गला साफ किया और बोली—कहने लगे मै अपनी आदतो की वजह से ही बूढी

हो रही हूँ और मुझे कोई नही पूछता। मै फाहशा हूँ। हर दिन नई-नई साडी पहिनती हूँ और मर्दो को दिखाने के लिए नगे पहनावे मे छातियाँ उछालती घूमती हूँ।

स्टोव मे तप रहा दूध खौलकर अब उफनने लगा है। निकट है कि दूध पतीली से उबलकर स्टोव बुझा दे कि इला फुर्ती से स्टोव की हवा खोल, पतीली मे चाय की पत्तियाँ डाल, ढँककर उतार देती है। खाट मे पडी बेबी अब रोने लगी है। उसकी तबीयत कई दिनो से ठीक नही। इला कही निकलती नही। बच्ची के लिए दवा लेने ही वह मेडिकल स्टोर्स तक गई थी। नही तो क्या मुझसे भेंट हो पाती ? दूध की शीशी बच्ची के मुँह से लगी देखकर पूछता हूँ—इसे ऊपर का दूध पिलाती हो ?

—क्या करूँ, मेरे दूध ही नही होता। ऊपर का दूध पिलाकर सोचती हूँ कि पता नही यह भी मेरे लिए ममता रख पाएगी अथवा नही।

और मै सोचता हूँ कि क्षण-क्षण मे इतनी दर्द भरी और फीकी मुस्कान लपेट लेना इला ने कहाँ से सीखा है ?

मेरी तरफ चाय का प्याला बढाकर कह रही है—मै इज्जत के साथ जीना चाहती थी इसीलिए बालाघाट से निकल आई। यहाँ आकर नौकरी भी कर ली लेकिन थोडे ही दिनो मे यहाँ भी पचीस तरह की बाते होने लगी। गुस्से मे भी पिताजी ने शायद सच कहा था कि मै बूढी हो रही हूँ और मुझे कोई नही पूछता। सोचा, वैसे मुझसे कोई शादी न करे तो क्या हुआ, ब्लैकमेल करके तो एक पुरुष पा जाऊँगी। लेकिन मेरा भाग्य देखो न, श्यामलाल शादीशुदा है और उसके बच्चे है, यह मै बाद मे जान पाई।

इला फिर हँसने लगी है। वही खोखली हँसी जिसे मै सह नही पाता। मै अब इला की किसी भी बात पर आश्चर्य करना भूल गया हूँ, पूछता हूँ—

—श्यामलाल यहाँ नही रहते ?

—नही, कहा न, मै रखैल हूँ। वह अपने बीवी-बच्चो के साथ रहते है और कभी दूसरे-तीसरे दिन आ जाते है।—इला फिर हँसी—

क्या करें, सवाल इज्जत का है ।

इला के यहाँ से निकलकर मन कितना भारी हो गया है । सोचता हूँ, व्यर्थ इला से मिलकर अपना जी खराब कर लिया ।

अपने घर तक का फासला तय करने मे बार-बार इला का वह चेहरा याद आने लगा जब दरवाजे तक पहुँचाकर वह मेरे पॉव तक झुक गई थी— तुम्हारे पॉव छूकर एक बात कहती हूँ—मानकर मुझपर बडा अहसान करोगे । श्यामलाल जैसा भी हो, उसे खोना इस जनम मे मै नही चाहती । मेरी केवल इतनी विनती है कि तुम मुझसे मिलने फिर कभी मत आना ।



बोलने वाले जानवर

छोटे डूंगर के पास की सख्त काली चट्टान, नीला आँचल, बर्फ-सी उजली धारा और कलगी-लगी घास के सब्ज बार्डरवाली माडिन नदी भी नही दीखती। नदी, सरसो की पीली चुन्नटवाले खेतो का दामन वहाँ कहाँ है? बस एक छोर से दूसरे छोर तक फैली मौन पहाडियो ने एक गोल दायरे मे हमे बाँध-भर लिया है। सामने की पहाडी मे हरियाले से फैलाव के बीच उखडे हुए जगलो की जगह चमक रही है—शायद वहाँ किसी दूसरे गाँव वालो के कोसरा के खेत होगे।

मिसेज जोन्स शायद पहाडी चढती-चढती थकने लगी थी, मेरे पीछे रह जाने का कारण जानने के बहाने रुककर लौटी और मेरी ओर देखकर धूप और कुम्हलाहट से पपडाए होठों से मुस्कुराकर बोली—क्या बात है?

फिर मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही पास आकर रुकी, चारो ओर निगाहे डाली और गर्दन से झूलते बाइनाकुलर को आँखो से लगाकर, जिधर मैं देख रहा था, उधर

देखने लगी।

मिस्टर जोन्स गाँव के लोगो से बाते करते बहुत आगे निकल गए थे। हम लोग पीछे रह गए यह देखकर वे जरा रुके और पलट कर आवाज दी। आँखो से बाइनाकुलर हटाकर, बडे ही उत्साहवर्धक लहजे मे मिसेज जोन्स मुझसे बोली—थकिए मत, अब सामने ही खेत है।

और दाहिना हाथ बढाकर मुझे अपने साथ ले लिया।

लेकिन खेत आने मे अभी भी देर थी। देखता हूँ कि मिस्टर जोन्स की साँस तक अभी नही भरी, लेकिन मै थक रहा हूँ और मिसेज जोन्स के पांव अब आडे-टेढे पडने लगे है। धूप की सारी चमक उनके स्कर्ट से अलगी-अलगी साफ, उजली और गठी हुई पिडलियो पर लोट रही है। पोनीज-टेल स्टाइल से बँधे उनके भूरे-भूरे सूखे बाल अधर मे ही टँगे हुए है। सफेद नाइलोन की उनकी शर्ट का कालर रह-रहकर गर्दन के पास खुलने और मुडने लगता है मिसेज जोन्स गाढे नीले रग के हेड-स्कार्फ और अमरीकन-पैटर्न के चश्मे मे कितनी भली लगती है।

सामने बाँसो का जगल दूर-दूर तक चला गया था। उनमे रग-बिरगे पखो वाले जगली परिन्दो की चहचहाहट हम लोगो की आहट सुन थोडी देर के लिए थमी और मिसेज जोन्स के पहुँचते-न-पहुँचते बाँस के नुकीले पत्तो और डगालियो को एकबारगी कँपाती उड गई।

आगे खेत था। सरसो की तरह बारीक दानो वाले कोसरा की झुकी-झुकी बालियाँ ढलवान से लेकर पहाडी के चढाव तक फैली हुई थी। जगह-जगह उडद के सूखे पौधो का ढेर, अधकटे पेडो के सिरो पर लदा हुआ था और जिर्रा भाजी के नन्हे पोधो मे लगे खट्टे फूलो की सुर्ख कलगियाँ हिल-हिलकर खीचती थी।

खेत के सिरे पर बनी झोपडी के पास पहुँचकर मिस्टर जोन्स रुके और उनके रुकने के साथ ही उनके साथ के एक गाँव वाले ने जरा आगे बढकर जगल मे चारो और मुँह करके आवाज लगानी शुरू कर दी। आवाज सुन-सान जगलो मे गूजती हुई पहाडियो से टकराई और लौट आई। मिसेज

जोन्स वहाँ पहुँचकर साल के पेड की छाँव मे बैठ गई और चारो ओर देख, एक तृप्ति की साँस लेती हुई बोली—

—आई लव दिस कन्ट्री !

उस बात का समर्थन मिस्टर जोन्स ने केवल मुस्कुराकर किया और पास खडे स्कूल मास्टर से पूछने लगे—हम लोग तो ठीक अबूझमाड मे है न ?

—नही यह तो छोर का एक गाँव है।

स्कूल मास्टर पिछले आठ-दस बरसो से उस क्षेत्र मे रह रहा है। शायद उन लोगो के जीवन को बहुत निकट से जानता है। बहुत-सी बाते बताएगा—इन लोगो की खेती कहाँ। मैदानी भाग मे हल चला कर खेती करना न तो उन्हे आता है न ही करते है। घने-से-घने जगल मे रहना और ऊँची-से-ऊँची पहाडी मे कोसरा बुनना। पहिले पहाडी के जगल जलाकर साफ़ किए जाते है फिर कुदाली-फावडो से धरती खोदकर कोसरा की खेती कर ली जाती है। अधिक हुआ तो उडद की दाल। साग के लिए जिर्रा भाजी का खट्टा शोरवा काफी है। आज इस पहाडी पर खेती है तो नीचे का आठ झोपडियो वाला गाँव भी बसा है। दो बरस बाद आकर देखिए तो यह पहाडी छोड लोग दूसरी जगह चले जाएगे और यह गाँव खाली हो जायगा। मिसेज जोन्स को इन बातो से कोई दिलचस्पी न थी, उकताकर वह उठी, थोडी दूर तक टहलती रही फिर आँखो मे बाइनाकुलर चढा लिया।

थकावट से मेरी टाँगे और पलके दोनो भारी होने लगी। छाँव मे बैठा। दरख्त के तने से टिकते ही सो जाऊँगा यह डर होते हुए भी अपने को सम्हाल नही पाया। तन-मन दोनो स्वप्निल होने लगे .

थोडी देर पहले जब नीचे के गाँव मे आये तो मिसेज़ जोन्स सबसे आगे थी। उनके स्वभाव मे अजीब बात है। मन प्रसन्न होता है और मूड मे होती है तो बच्चो-सी शरारत और चचलता उनमें भर जाती है लेकिन किसी बात पर खिन्न होती है तो मिस्टर जोन्स भी बातें करने का साहस नही कर पाते। दोनो की रुचियो मे समानता। नही अक्सर मिस्टर जोन्स एडजस्ट करते दिखाई देते है। मिसेज जोन्स कलाकार है। उन्हें प्रकृति का

सौंदर्य चाहिए । सुन्दर और सजीव लैंड-स्केप के लिए एक जगह वह कई-कई घंटे बिता देना चाहती थी पर उनके मिस्टर की बात और है अपने देश से इतनी दूर वे बस्तर की प्रकृति ।पर मुग्ध होकर नही, एन्थ्रापालाजिस्ट की हैसियत से लोगो की ओर आकर्षित होकर आए थे ।

अबूझमाड मे दोपहर को गाँव—गाँव नही, श्मशान हो जाता है। सडक से कोई तीन मील जगल मे घुसने के बाद एक ऊँची जगह पर चार-आठ झोपडियाँ दीखी—यही गाँव था । फूस और बाँस की कमाचियो की सभी झोपडियो के सामने केवल एक ही आँगन था जिसके एक ओर लकडी की एक डोगी पडी हुई थी। उसके पास ही एक मोटी सूअरनी अपने छह-सात छोटे-छोटे पिल्लो के गिर्द घिरी लेटी थी । तीसरी झोपडी के ठीक दरवाजे के सामने एकदम नगी और धूल मे सनी पाँच-सात बरस की दो लडकियाँ खेल रही थी । मिसेज़ जोन्स को दूर से देखकर ही वे एकाएक उठी और घबराकर एक ओर के जगल मे तेजी से घुस गई । मिस्टर जोन्स की आँखो मे कोई तरल सी ममता घिर आई । स्नेहिल दृष्टि से बच्चो की ओर ताकते हुए वह मुस्कुराए लेकिन मिसेज जोन्स के होठो के अगले भाग मे एक कठोर-सा सूखापन घिर आया । निर्विकार स्वर मे पूछने लगी कि वे बच्चे उन्हे देखते ही क्यो भाग खडे हुए ? जवाब मे सब केवल हँसने लगे ।

लौकी की बेले सभी झोपडियो पर छाई हुई थी और पिछले आँगन के मडप भर मे फैली-बिखरी सेम की लताओ मे नन्हे और प्यारे बैजनी फूल सज रहे थे । कुछ दूर पर सलपी का बडा पेड खडा था जिसकी गर्दन मे टँगी मटकी मे रिस-रिसकर रस भर रहा था । उसके पास से ही सरककर सरसो के पीले खेतो का आँचल तोरई फूल की तरह लहराता था और इन सब की पृष्टभूमि मे कोहराढँपा नीली-नीली पहाडियो का जादू-भरा दायरा ...

मिसेज जोन्स मोह मे थमी खडी रह गई । थोडी देर तक मत्रमुग्ध-सी निहारती रही फिर पास के एक टीले पर जा केमरे का एक स्नेप लेकर,

राइटिंग-बोर्ड के एक कागज मे पेन से स्केच खीचने लगी। मिस्टर जोन्स ने कहा—पूरा गॉव खाली है, लोग कहॉ गए ?

—दिन मे लोग गॉव मे नही मिलते। सुबह होते ही पहाडी पर चढ जाते है और वहाँ से शाम के पहिले नही लौटते। मिसेज जोन्स से टीले से ही स्केच खीचते-खीचते रुककर पूछा—इनके खेत कहॉ है ?

—पहाडी मे ही तो खेत होते है।— कहकर स्कूल मास्टर ने सामने की एक पहाडी के एक उखडे हुए भाग की ओर इशारा कर दिया जो जहाँ से ऐसे दिखाता था जैसे ऊँची-ऊँची घास के मैदान के बीच थोडी-सी जगह किसी ने छील दी हो।

—चार माह ही जी तोडकर ये लोग काम करते है। बाकी आठ महीने पुरुष जगल-जगल शिकार करते भटकते है और औरते जगल मे कद मूल और महुए के फूल इकट्ठे करती है।

मिसेज जोन्स वहाँ से उठकर एक झोपडी के पास तक चली गई थी। दरवाजे की दराज से भीतर झॉकती हुई अनायास पुकार उठी—

—यह देखो तो क्या है ?

झोपडी के भीतर देखने को था क्या ? बाहर खडे रहकर पहाडियो, सलपी के पेड और सरसो के पीले खेतो के बैकग्राउड मे फोटो लेना या स्केच खीचना अच्छा लगना है पर भीतर देखने पर सुन्दरता के बदले कुरूपता झॉकती है। आदमी आज भी ऐसा जोवन जीता है ?

मैने मिसेज जोन्स का साथ दिया। कुछ नही, बॉस की एक-दो चटाइयॉ उन पर एक-दो चिथडे (शायद वह बिस्तर था) दो-तीन माटी की काली-काली हॉडियॉ, दीवार से लटका एक मॉदर (बडा ढोल) और कुछ सूखी तूँबियॉ . .

लेकिन मिसेज जोन्स कुछ और दिखा रही थी—जहाँ चूल्हा था उसके ठीक ऊपर एक धुँए मे अँटा बॉस खुँचा हुआ था और उसमे मास की बडी-बडी बोटियाँ सूखने के लिए लटक रही थी।

मैने कहा—यह गाय का मास है, सुखाया जा रहा है।

मिसेज जोन्स शायद आश्चर्य प्रकट करती लेकिन तभी उस मोटी सूअरनी का एक पिल्ला भटककर उनके पास तक आ गया और उनके लौटते ही तेजी से भागा। और उनका ध्यान बँट गया। खुशी से छलककर उस पिल्ले की ओर देखती हुई बोली—लुक एट दैट पपी!

मिसेज जोन्स जानवरो को बहुत प्यार करती है। जहाँ भी जाती है दो-एक कुत्ते-बिल्ली या बन्दर अपने गिर्द जरूर समेट लेती है। अपने खाने मे से आधा निकालकर भी वह जानवरो को दे डालती है भले वह मरियल या बीमार कुता ही क्यो न हो।

जिधर वह पिल्ला भागा था—मिसेज जोन्स उधर ललचाई दृष्टि से ताक रही थी। उनका बस चलता तो दौडकर उसे पकड लेती और बडे प्यार से उसे गोद मे बैठाकर, चुमकारती, सहलाती और शायद उसके नर्म जिस्म पर अपने गाल तक धर देती।

लेकिन मिस्टर जोन्स कह रहे थे कि अब पहाडी पर चलना चाहिए इससे उनके खेतो का देखना तो होगा ही, गाँव के सभी लोगो से भेट भी हो जाएगी। सुनकर मिसेज जोन्स वहाँ से बच्चो की तरह दौडी हुई आई और सबसे आगे अपने को कर, पुलकती हुइ बोली—

—तो लो पहाडी पर चढने के लिए सबसे पहिले मै तैयार हूँ!

पहाडी की चढाई लगभग एक मील की थी। आधा फासला मिसेज जोन्स गुनगुनाती हुई तय कर गई—

एण्ड सम डे आई नो,
बैक टु हर आई विल गो,
फार माई हार्ट इट काइज़
फार योर लव डार्क आइज!

बडे ही सुरीले कठ से निकला कोई रुसी लोक-गीत शायद कोई प्रेम का वेदनामय गीत। मेरी बरोनियो की छाँह मे वह स्वर अपनी सारी कोशिश और मिठास लिए घुल रहा है...

अकस्मात पास की झाडी मे सूखे पत्ते तड-तड टूटने लगे, बाँस की नुकीली

टहनियाँ थरथराई, छेदावरी काँटे का नाजुक पौधा कई बार काँपा, जिर्रा के सुर्ख फूल हिले हिले और एक गेहुएँ रग की भरपूर जवान औरत बाँस की झाडी के पास आकर खडी हो गई मासल और खुली। गर्दन, काँधे,उरोज और नाभि तक अनढँपी। कमर के नीचे का कपडा केवल बालिश्त भर के भाग को ही ढँकता था। तभी पटेल आया, गाँव के आठ-दस लोग इधर-उधर से सिमटते दिखाई दिए और मिसेज जोन्स ने मुझे आवाज दी।

कच्चे पपीते के बिखरे बीज धूप मे कैसे झलमलाते है ? शायद वनजामी के दातो की तरह जब वह गर्दन पीछे डालकर हँसती है हँसती है और जब हँसी झेल नही पाती तो अपने उरोजो पर बाहो की कैंची बनाकर थकी-थकाई सी बैठ जाती है। खीरे का रग पकने के बाद वनजामी के जिस्म की तरह हो तो होता है न ? ऐसे ही-गदराया, गदराया मास और रस से भरपूर। उसमे नाखून गडा दो तो क्या खून उछल आएगा ? बरगद की छाँव की सारी गहनता वनजामी ने शायद अपने बालो मे समेट ली है। तेल से चमकाकर कितना कस लिया है। उसके लाल मूँगो, कौडियो, ककुए और किसी जगली नीले फूल से सजे और दाहिने कान की तरफ झुके टेढे जूडे को देखकर मुझे अनायास ही किसी लोकगीत की पक्तियाँ याद आती है—

कान खाई खोसा नी बाँध रानी,
मै मारेदे अगिन-बान !

(प्रियतमे, कान पर झुका हुआ टेढा और कामोत्तेजक जूडा मत बाँध, मुझसे नही रहा जाता। कही तेरे तीर मुझे घायल न कर दे)

चील के बादामी फल की तरह उभरे पपोटो से निकली पलके छेदवरी काँटे-सी ही तो होती है, फिर वनजामी ने छेदावरी का एक पौधा अपने कान मे क्यो खोस रखा है ? जिर्रा की कोई नस छिटककर उसकी पुतलियो मे डोर बन गई है। भारी-भारी देखती हुई मिस्टर जोन्स, मिसेज जोन्स और फिर मेरी पत्तल पर ठहर जाती है और उन काँटों से लहूलुहान करती पूछती है—और दूँ ? और दूँ ? ..

मिसेज जोन्स कोसरा का रेत मिला भात खा रही है—उनसे नही खाया जाता। जिर्रा का इतना खट्टा शोरवा भी हलक के नीचे नही उतरता। लेकिन मिस्टर जोन्स एन्थ्रापालाजिस्ट है। इन्ही आदिमजातियो के बीच उन्हे रहकर काम करना है उनका खाना वह सबसे पहिले खाने के अभ्यस्त हो जाना चाहते है। कोसरा के बारीक दानो और रेत के रग मे अतर नही होता। उन्हे चुनकर अलग-अलग करना कठिन है। रेत समेत चबाने पर भी मिस्टर जोन्स के चेहरे पर शिकन नही अलबत्ता मिसेज जोन्स बर-बस मुस्कुरा रही है...

कुछ देर पहिले जब जली हुई अगीठी के राख फैले ढेर के पास तीन पत्तल बिछे और खाना बन जाने की सूचना के साथ हमे ले चलने के लिए वनजामी निकट आ खडी हुई तो मिसेज जोन्स के भरपूर आँखो से वनजामी की ओर देखा और तत्काल ही अपने पर नजरें फिसलाती दूसरी ओर ताकने लगी। मिसेज जोन्स पूरी तरह क्यो देख नही पाई ? शायद उन्हे लगा हो कि वनजामी एक जवान लडकी है और इतने सारे पुरुषो के बीच इतने कम कपडो मे—लगभग नगी—खडी है।

सबने उठकर वनजामी का पीछा किया और राख बिखरी अगीठी के पास आए। मिसेज जोन्स के पूछने पर मै बताता हूँ कि वनजामी पहाडी के नीचे वाले गाँव की लडकी है। बाप नही अकेली बूढी माँ है अत खेत का सारा काम अकेली करती है। किसी ने बताया कि वनजामी के लिए ही मारवी परलकोट की पहाडी छोडकर यहाँ आ बसा है। यह सच है कि वनजामी जैसी लडकी आस-पास की पहाडियो और गाँवो मे एक नही लेकिन परल-कोट की पहाडियो का साँवला, बलिष्ठ और हँसमुख मारवी क्या हर जगह मिल सकेगा ? फिर सात महीनो से दिन-रात साथ रहकर भी मारवी वनजामी को जीत क्यो नही पा रहा ? वनजामी के मन मे क्या कोई और है ?

अगीठी तक मारवी भी मेरे साथ आया। देखता हूँ कि वनजामी से अधिक सकोच शायद मारवी मे है। जह वह निकट होती है तो पलकें

उठाकर वनजामी की ओर देखते मारवी से नही बनता लेकिन जब जरा दूर हट जाती है तो एकटक ताकता है। शायद कायर है।

सजे हुए पत्तल के पास पहुँचकर मिसेज़ जोन्स रुक गई। अगीठी के एक ओर बिल्कुल जर्जर बूढिया बैठी हुई थी। उसी के पास शायद उसकी बहू थी। तेईस से अधिक की नही होगी। एक बच्चा जनकर ही बूढी हो रही थी। याज से उसका दाहिना पॉव गल रहा था अपने बीमार बच्चे का मुँह खुले स्तन मे देकर वह वनजामी और स्वस्थ लोगो की ओर कैसी निगाहो से देखता थी ?

मिसेज जोन्स ने केवल क्षणकाल के लिए उधर देखा फिर अपने पति की ओर शिकायत भरी ऑखो से देखने लगी—यहॉ कैसे खाया जाएगा ?

खाने के दौरान मे मारवी को टटोलने के लिए पूछता हूँ—मारवी, घोटुल (अविवाहित युवक-युवतियो का आमोद गृह) जाते हो ?

—हॉ।

—और वनजामी ?

—वह भी जाती है।

—तुम दोनो साथ-साथ नाचते हो ?

—हाँ।

—घोटुल मे वनजामी तुम्हारे साथ सोती है ?

—नही, मारवी झेपकर हँसने लगता है—नाचने के बाद घर चली जाती है।

मै कहता हूँ—मारवी, जब तुम वनजामी को इतना प्यार करते हो तो उसे लेकर भाग क्यो नही जाते ?

उस बात का जवाब उसके पास नही। बस, हँसता है।

दोपहर की साँस उखड चुकी थी। बदली के एक टुकडे ने इधर छाँह कर दी लेकिन दूसरी तरफ की पहाडी मे फैली रोशनी का ऑचल और तेजी से लकलकाने लगा। मेरे बार-बार आग्रह करने पर बडे ही सकोच सहित मारवी ने एक गीत गाया लेकिन गीत की पहिली पक्ति सुनकर ही

वनजामी उठकर चल दी।

ताना नारे बेदो इन्दार
किस टोपी अवकोर ?
लेयोर जोगी रुपे बापीयो
बिसीर कोडो लादोयो
कारेला कारेलाग ।
चोलोर लयोर रेलोयो
पाउर रूगोय अवकोकोए
तानाय नारे बेदोय
उसाय बेने आकी।

(वह किस गाँव की है जिसका चेहरा आग की तरह दमकता है। उसने जोगी की तरह वेश तो बदल लिया है लेकिन उसका तेज छिपाए नही छिपता। उसका मोहाच्छन्न कर देने वाला सिंगार कितना उन्माद और मनभावन है—जैसे लम्बी और हरी लता मे खिलने वाले करेला के प्यारे-प्यारे फूल। उसका सुन्दर मुख यो दहकता है जैसे सियाडी की घनी बेल मे फैले हुए नर्म चिकने और कोमल पत्तो पर सूरज की रश्मियाँ चिलचिलाती हैं। नही, उसकी तरह गाँव मे और कौन है ?)

नीचे उतरने मे देर न थी। सारा सामान जो पिछले दो-तीन घन्टो से बिखरा हुआ था, समेटा जाने लगा। थोडी देर के बाद वहाँ के हरे-हरे दरख्तो और नीली पहाडियो पर सुरमई आंचल डालकर कोई पलको मे खुमारआलूद नशा घोलेगा। उस आँचल को आहिस्ते-आहिस्ते सरका कर यही कही से—आगन मे गोलाकृति मे सूखते धान-सा-चाँद जब अनायास ठिठक जायगा तो यह पहाडी कैसी लगेगी ?

सब बिदा देने आए—पटेल, मारवी, जर्जर बुढिया, खेत मे इधर-उधर फैले लोग, याज पीडित औरत और उसका बीमार बच्चा लेकिन वनजामी दिखाई न दी। जाते-जाते सब लोगो से घिरकर मुझे अनायास कुछ स्मरण आया, मैंने जोन्स से कहा—ये लोग बख्शीस मागते है।

मिस्टर जोन्स के कुछ कहने के पूर्व ही उनकी पत्नी ने ग्राश्चर्य से मेरी ग्रोर देखते हुए पूछा—किस बात की ?

उस बात का जवाब देना मेरे लिए कठिन हो गया।

मिस्टर जोन्स ने पूछा—इन दो-चार रुपयो का ये लो क्या करेगे ?

—सब मिलकर शराब पीएगे। स्कूल मास्टर ने कहा। तत्काल मिसेज जोन्स बोली—यह तो ग्रच्छी बात नही। उनके होठो मे वही सूखी कठोरता घिर ग्राई मुझसे कहने लगी—हमे पैसे देना ग्रखर रहा है, यह बात नही। ग्राप खुद सोचिए न यूँ मागकर पीना ग्रौर पैसे बरबाद करना क्या ग्रच्छा लगता है ?

मै कुछ भी कह सकने की स्थिति मे नही। यह सब उन्हे समझा नही सकता। सोचता हूँ कि ग्रभी थोडी देर पहिले मिसेज जोन्स इन लोगो की कितनी प्रशसा कर रही थी—इनकी सादगी, व्यवहार, भोलापन ग्रौर मेहमाननवाजी की ग्रौर ग्रब क्या हो गया ?

मिस्टर जोन्स को कुछ न कहकर धीरे से मुस्कराते हुए रुपये निकालते देख उनके होठो का सूखापन ग्रौर गहरा हो गया है। रुपये लेकर सलाम करते लोगो की ग्रोर एक बार भी देखे या सलाम का जवाब दिए बिना वह तेजी से पलटी ग्रौर नीचे उतरने लगी। याज वाली ग्रौरत की गोद के बच्चे की ग्रोर देखकर मै सोचता हूँ कि सूग्ररनी का पिल्ला इस बच्चे से निश्चय ही खूबसूरत होगा नही तो मिसेज जोन्स इसे प्यार क्यो नही करतीं ?



मासूम बाबा

बस एक ही मिसरा महफिल की छत धुनने के लिए काफी था। ढोलक वाला बाई तरफ गर्दन टेढी किए पूरे जोश मे आकर भरपूर थाप दिए जा रहा था जिससे उसके लाँबे बाल थरथरा-थरथराकर चेहरे को ढँकने लगते थे। ऐसे अवसर पर एक झटका देकर वह बालो को पीछे फेंकता और किशन कौव्वाल को ओर देखने लगता। किशन कौव्वाल हारमोनियम की रीड्स पर फुर्ती से उँगलियाँ फेरता-फेरता धौकनी चलाने वाला हाथ एकाएक छोड, जरा आगे बढा देता और पुरजोश आवाज मे वही मिसरा दुहराने लगता जिसने लगभग सात मिनट से पूरी महफिल मे जादू-सा तारी कर दिया था—

—ख्वाजा तेरे नयनो मे मै खो गई।

पहिले कौव्वाल के पास बैठे रहमत भाई को वज्द आया और बेखुदी के आलम मे झूमते हुए वह खडे हो गए। उनके उठते-न-उठते लाल खॉ कँपने लगा, महमूद मियाँ को दो युवको ने आगे बढकर सम्हाला और शहाबुद्दीन के हाथ से तस्बीह छूटकर गिर पडी।

—ख्वाजा तेरे नयनो मे मै खो गई।

मासूम बाबा अभी तक केवल सजीदा बने बैठे हुए थे। थोडी देर तक उनका सिर हिलता रहा फिर अचानक अपनी उँगलियो मे फंसी दोनो सिगरेटे फेककर एक झटके के साथ वह उठ खडे हुए और सिर धुनने लगे। उनका उठना था कि पूरी महफिल पर किसी ने जादू-सा कर दिया। करीब-करीब हर आदमी अपनी जगह पर खडा हो गया और वज्द के आलम मे झूमने लगा। किशन की आवाज मे सौ-सौ बिजलियाँ लपकी और ढोलक वाले ने जो गर्दन टेढी की कि बालो से चेहरा ढँक जाने की भी परवाह न की।

जाजिम और पुराने बिछावन को बाँधकर औरतो के लिए परदा कर दिया गया था। जाज़िम के सूराखो मे कई-कई आँखे आ टिकी और परदे के जोड-जोड पर कई उजली-गोरी उँगलियाँ झाँक गई।

पेट्रोमेक्स की झक-झक करती रोशनी मे मासूम बाबा का समूचा व्यक्तित्व परदे के उस ओर के लोगो मे समाने लगा। दुबला-पतला छरहरा शरीर, गहरा सावला रग, लम्बा द और भावपूर्ण बडी-बडी आखें। गर्दन से घुटनो तक लाल साटिन का ढीला-ढाला झुब्बा और टखनो से ऊँची शलवार! उनकी दोनो कलाइयो मे पडी हरी-हरी चूडियाँ बडे मीठे ढग से बज रही थी। थोडी ही देर बाद जाजिम की किसी बडी सूराख पर अधिकार किए हुए एक लडकी (जिसका अपने पास बैठी औरत से केवल इसी बात पर झगडा हो गया था कि वह स्वय आध घटे से सूराख पर आँख जमाए बैठी थी और दूसरो को देखने का मौका नही दे रही थी) ने आसपास के लोगो को झुक-झुककर एक ताअाज्जुब की बात बताई कि मासूम बाबा रो रहे हैं!

किशन क़ौव्व ल की आवाज का सोज सबको बाँध लेता है। कमबख्त ने आज यह क्या किया कि एक मिसरे से ही महफिल को लूट लिया।

शहर मे मासूम बाबा किसी का अता-पता पूछते नही आ गए, लाए गए थे! कोई छह महीने पहिले का जिक्र है कि मोमिनपुरा का चूडी वाला अकबर बेग पास के किसी देहात से बाजार के बाद लौट रहा था। रास्ते

मे एक बेपरवाह-सा नौजवान मिला जिसने अकबर बेग को रोककर उससे चूड़िया पहनी और कहा कि शहर मे जाकर वह सबसे कह दे—हर घर की औरत हरी चूड़ियाँ पहिने और खिचडी भाजी की फातिहा दिलवाए। अकबर बेग से मुनासिब आदमी इस बात के लिए और दूसरा था भी नही। शहर मे धूम मच गई। बाजार मे हरी चूडियो का देखना मुश्किल हो गया और घर-घर खिचडी-भाजी की फातिहा दिलाई गई।

यह बात आई-गई हो गई। किसी ने यह जानने की कोशिश न की कि हरी चूड़ियाँ पहिनने व फातिहा दिलवाने से आखिर क्या होने को है, क्यो होने को है और मूलत बात किसने कही।

कोई चार-एक महीने बाद देखा गया कि मुहल्ले के मजार शरीफ (किसका मजार है यह तो बहुत कम लोग जानते है लेकिन जहाँ हर साल बहुत बडा उर्स लगता है) के पास एक मैले-कुचैले कपडो वाला नौजवान जाने कहाँ से आकर भूखा-सूखा पडा रहता है। कुछ दिन तो लोगो ने ध्यान न दिया लेकिन बाद मे आसपास के लोगो मे कोई न कोई कुछ बचा-खुचा ले जाकर उसके आगे डालने लगा।

कपडे मे ढँकी हुई आग कब तक छुपी रहती? एक दिन जाने कैसे सबको मालूम हो गया कि यह वही मासूम बाबा है जिन्होने अकबर बेग से खिचडी-भाजी की फातिहा और हरी चूडियाँ पहिनने की बात कही थी। उसी शाम को मुहल्ले के कुछ सयाने-बूढे सहमते-सहमते उनके पास पहुँचे, इतने दिनो तक उन्हे न पहिचान पाने की गलती के लिए गिडगिडाकर माफी माँगी और उन्हे अपने हमराह ले आए। अकबर बेग तेल और तेल की धार देखता है। झुककर उसने मासूम बाबा के पाँव पकड लिए कि उन्हे वह अपने गरीबखाने पर ले जाने की इजाजत चाहता है।

शहाबुद्दीन मुहल्ले भर मे अधिक पैसो और इज्जत वाले तो थे ही मजहब और ईमान पर जाने वालो मे भी अगुवा थे। मुहल्ले मे किसी के घर मँगनी, शादी या अकीका हो, ढूंढ-खोज करने पर उनका दूर-दराज का रिश्ता निकल ही आता और भले ब्याह का मडप वहाँ से दो सौ गज के

फासले पर हो, लाउड-स्पीकर उनकी ही बिल्डिग पर लगता और सारा दिन रिकार्डिंग होतो। जहाँ इतनी मामूली-मामूली बातो को शहाबुद्दीन महत्व देते थे वहाँ इतनी बडी बात हो और अकबर बेग चूडीवाले के नाम के साथ—यह उन्हे हरगिज गवारा न था अत आखिर मे मासूम बाबा शहाबुद्दीन की बिल्डिग मे ही लाए गए और ऊपर का कमरा उन्हे दिया गया।

दूसरे दिन सुबह से ही शहाबुद्दीन के यहाँ लोगो का ताता लग गया। बात की बात मे जाने बात कहाँ तक पहुँच गई कि एक पहुँचे हुए बाबा (मासूम शायद इसलिए कि उम्र उनकी बीस से अधिक की न थी) शहाबुद्दीन के यहाँ ठहरे हुए है और लोग मुरादो की झोलियाँ भर-भर लौट रहे है। शाम तक यह हालत हो गई कि आँगन और बरामदे मे औरत और आदमी खचाखच भरे हुए है और मुश्किल मे लोगो को एक घटा देकर बाबा जो ऊपर के अपने कमरे मे गए तो फिर नही आए।

शहाबुद्दीन ने बरामदे मे एक कुरसी डलवा दी थी। जब लोगो को सुनना होता तो वह उस कुर्सी पर आँखे बन्द किए, दो-दो तीन-तीन सिगरेटे एक साथ जलाए पीते हुए गुमसुम बैठे रहते। लोग आते, उनके हाथो का बोसा लेकर अपनी आँखो से लगाने और उनके गले मे गजरा डालकर गिडगिडाते हुए खडे हो जाते। जिन्हे कुछ कहना होता उन्हे बाबा स्वय कह देते। लोग जानते थे कि जिसे अपनी आरजुएँ जाहिर करने के बदले मे भद्दी और मोटी गालियाँ मिलती वह बहुत कुछ दुआ ही होती थी। वे नसीब वाली थी जिनके खाली गोद फैलाने पर बाबा ने अपने गले का गजरा तोडकर उनकी गोद मे डाल दिया था। लोग उन्हे घेरे बैठे रहते और जैसे ही मुँह का पान उगलते या बीडी-सिगरेट फेकते, लोग उसके लिए चील की तरह झपट्टा मारते। जिसके हाथ बीडी-सिगरेट लगती वह चाहे औरत हो या बच्चा, उसे फूँक-फूँककर राख किए बिना न छोड़ता।

दोपहर मे रामबिशाल को लेकर उसकी पत्नी आई। रामबिशाल के आधे जिस्म को फालिज ने बेकार तो कर ही दिया था अब एक वाहियात-

सी बीमारी के पजे मे भी आ गया है। सभी तरह के इलाज से वह थक गया था। दिन-ब-दिन उसकी हालत बिगडती जा रही है और इतना लागर हो गया है कि उसे देखकर दवा के बदले दुआ की ही याद आती है। उसकी पत्नी रामबिशाल को रिक्शे मे लेकर पहुँची और कॉधे का सहारा दिए-बाबा के पास आकर बिना कुछ बोले बस फूट-फूटकर रो दी।

रामबिशाल के प्रति हर आदमी सहानुभूति रखता है। शहाबुद्दीन ने भी सिफारिश की—बाबा, अभागे के बडे छोटे-छोटे बाल-बच्चे है।

जुमेरात के दिन बाबा जलाल पर होते है। थोडी देर तक वह आँख बन्द किए झूमते रहे फिर एकाएक आँख खोल बडी जलती हुई आँखो से रामबिशाल की ओर देखा और अपना जूता निकाल तीन-चार जूते राम-बिशाल के लगा दिए।

रामबिशाल बेहद कमजोर आदमी था। उस मार से एक ओर लुढक पडा और हाँफता हुआ बडी करुण आखो से अपनी पत्नी की ओर देखने लगा जो पास ही आँखे पोछती हुई खडी थी। एक सिरे से दूसरे सिरे तक उत्साह की लहर दौड गई कि रामबिशाल का भाग्य लौट आया।

उसके बाद तो रोज का नियम बन गया। सुबह से लेकर रात के ग्यारह बजे तक लोगो-की भीड आती, जमा होनी और लौट जाती। जिन्हे दीदार होते, हो जाते और जिन्हे कई घटो के इतजार के बाद मायूसी होती वे हाथ का गजरा बाबा के नाम से उनकी कुर्सी पर ही डाल वापस हो जाते।

किशन कौव्वाल इधर-उधर का दौरा करना हुआ साल मे एक मर-तबा डबरी के उर्स के अवसर पर आ जाया करना था। शहाबुद्दीन को किसी तरह पता चला कि किशन कौव्वाल किसी शहर के दौरे से नागपुर वापस जा रहा है। बस ठीक वक्त पर स्टेशन पर जा किसी-न-किसी तरह समझा-बूझाकर शहाबुद्दीन उसे एक दिन के लिए अपने घर ले आए। अरे, जहाँ इतना खर्च किया वहाँ थोडा और सही चलती गाडी मे चलनी का क्या भार ?

उसी रात कौव्वाली की महफिल जुटी और जैसे आधा कस्बा शाहबुद्दीन के यहाँ इकट्ठा हो गया। मासूम बाबा को लोगो ने खुलकर देखा। यो तो उनकी हर बात निराली। मसलन पुरुष होकर कलाइयाँ भर-भर चूडियाँ पहिनना, खाना नही के बराबर खाना, बात-बात मे बुरी गालियाँ बकना और दो-दो सिगरेट एक साथ पीना। यदि देखा कि सामने बच्चे खेल रहे है तो उनमे मिल जाते या किसी बच्चे के हाथ से पतग की डोर छीन अपनी उँगलियो पर नचाने लगते। उस रात का देखना, लेकिन, कुछ और ही था जब किशन कौव्वाल ने एक ही मिसरे मे महफिल तो लूट ही ली, मासूम बाबा का भी कलेजा नोचकर रख दिया।

शहाबुद्दीन क्या करते ? घोडे को नही, उसकी चाल को रोना है। किसने कहा था अकबर बेग से कि अपनी बीवो और दोनो जवान लडकियो को बाबा की खिदमत के लिए शहाबुद्दीन के यहाँ भेजे ? खुदा का दिया उनके यहाँ बहुत है। जवान बेटे है, एक फूल-सी क्वारी और प्यारी बच्ची है और कई नौकर-चाकर है। कौव्वाली के दूसरे दिन क्या देखते है कि बाबा के कमरे मे रोज की तरह उनके पाँव दबाने के लिए उनकी बेटी, पडोस के रहमत मियाँ की भतीजी नजहत और उर्दू मास्टर की नवविवाहिता पत्नी के अलावा अकबर बेग की दोनो लडकियाँ भी मौजुद है।

शहाबुद्दीन की आँखो मे जैसे खून उतर आया। अकबर बेग ने उन्हे समझ क्या रखा है ? और अगर वह राह-राह और पत्ते-पत्ते के भी होते तो भी बाबा की खिदमत के लिए अपने खान्दान वालों के अलावा किसी और का अहसान न लेते फिर तो खुदा का शुक्र था। न चाहते हुए भी उन्हे अकबर बेग की लडकियो को पॉव दबाने से रोक साफ-साफ कहकर वापस भिजवा देना पडा कि अभी उनके बच्चे जिन्दा और सही-सलामत है।

दो-तीन महीने मुहल्ले भर मे बडी गहमा-गहमी रही लेकिन रमता जोगी और बहता पानी किसके रोके रुका है जो शहाबुद्दीन रोक लेते ? बहुत से लोगो की मिन्नते धरी-की-धरी रह गईं और मासूम बाबा सारे बधन तुडाकर अचानक एक दिन चले गए।

जाने शहाबुद्दीन की जिन्दगी मे यह कैसा मोड ग्रा गया कि उन्होने हर काम से ग्रपने हाथ खीच लिए। यहाँ तक कि लोगो से मिलना-जुलना ग्रौर उठना-बैठना भी कम कर दिया। उनके बीवी-बच्चे भी ग्रपने मुहल्ले पडोस के काम-काज मे नही दिखते। सबसे ग्रधिक ग्राश्चर्य तो लोगो को उस दिन हुग्रा जब रहमत मियाँ की भतीजी नजहत (जिसे शहाबुद्दीन ग्रपनी बेटी से कम न समझते थे) की शादी से दो दिन पहिले ही शहाबुद्दीन कहीं बाहर चले गए।

नजहत की शादी से कुछ दिनो के लिए मुहल्ले की उखडी हुई रौनक वापस ग्रा गई। बडी धूम-धाम रही। नये-से-नये फिल्मी रिकार्ड बजे। भारी-से-भारी पटाखे छूटे ग्रौर खूब ग्रनारदाने जले। शहाबुद्दीन के यहाँ ग्रपमान के बाद ग्रकबर बेग की पत्नी ने भी इधर-उधर ग्राने-जाने से तौबा कर ली थी लेकिन रहमत भाई तो ग्रपने थे।

तीन-चार माह जैसी लम्बी ग्रवधि के बाद ग्रकबर बेग की पत्नी घर से बाहर निकली थी। स्वभावत. ही हर किसी से ललक-ललककर मिलीं। थोडी ही देर के बाद जाने क्या हुग्रा कि बहुत ग्राहिस्ते-ग्राहिस्ते ग्रौरतो के बीच सहसा एक बात फिसलने लगी—हाय ग्रल्लाह। शहाबुद्दीन की लौडिया के तौ पाँव भारी है!

उधड़ी हुई दीवार

सफेद, बगुलपँखी और चौडी किनारे वाले आँचल के उस छोर को, जिसमे चाबियो का गुच्छा बँधा था, पीठ पर फेक फर राधिका मौमी बोली—ना बाबा, बार-बार नहाने की अवस्था मैं पार कर चुकी हूँ।

अवस्था की बात आई तो मैंने राधिका मौसी को जैसे अब तक न देखा हो ऐसे देखा—गोरा चिट्टा रग, आवश्यकता मे अधिक भरा हुआ जिस्म और कद से मझोली (जिसे अधिकाँश लोग नाटी कहेगे) मौसी शायद चालीस पहुँच रही होगी। देखने मात्र से उम्र का अनुमान लगाना कठिन था। स्वास्थ्य बहुत अच्छा था और हँसने पर गालो के मास जहाँ इकट्ठे हो कर उभरते है, वहाँ गुलाबी रगत चटख उठती थी। माथे पर पडी गोल टिकुली, माग मे सिन्दूर की मोटी और गाढी रेखा और मुँह हमेशा पान से भरा। वैसे जेवरो से उन्हे दिलचस्पी तो न थी लेकिन सुहागन होकर विधवाओ की तरह रहना अच्छा नही लगता इसलिए गले मे सोने की जजीर और कलाइयो में चार-चार सोने की

चूडियाँ-भर डलवा ली थी।

राधिका मौसी के पति स्कूल मास्टर थे। उनकी अपनी कोई औलाद न थी और आगे-पीछे को चिन्ता से भी मुक्त थे। पर राधिका मौसी ने अपनी बहिन की बच्ची से अपनी सूनी गोद भर ली थी। देहात का खर्च यो भी अधिक नही हुआ करता अत बडे चैन से रह लेते थे।

उनकी तन्दुरुस्ती मे वैसे तो कोई कमी न थी, अच्छी—खासी धरी थी फिर भी दवाएँ खरीदी जाती, इजेक्शन पर इजेक्शन लगते और अपनी तबीयत के अच्छी न होने की प्राय शिकायत किया करती। नेम-धर्म के प्रति मन मे गहरी आस्था थी। छुआ-छूत का बडा ख्याल रहता था। छोटी जात की औरतो के पास बैठना तो दूर रहा कही धोखे से छू गई तो रात में भी नहाए बिना चौके पर नही जा पाती थी। घर मे काम प्राय नही के बराबर था, अवकाश अधिकाधिक मिलता था और स्वभाव से मिलनसार थी अत हर किसी से मिले-जुले बिना चैन न आता था। अब इस पर ही कुछ लोग उन्हे लुतरी कहने लगे तो इसमे उनका क्या दोष?

जिस दिन वर्मा सा० का बच्चा जाता रहा मौसी अपने स्वभाव के अनुसार उसी दिन पहुँचती लेकिन अपनी निगोडी तबियत को वह क्या करती जिसने उन्हे अचानक ही पलग पर लेट रहने को और सुई पर सुई लेने को बाध्य कर दिया।

दूसरी दोपहर काम-काज से निबटकर मौसी जब मेरे पास आयी तो सबसे पहिले जो बात उनके मुँह से फूटी वह उनकी तबीयत के बारे मे थी बाद मे वर्मा सा० के भाग्य को लेकर पछताती रही। मेरे पास आने का मतलब मुझे साथ लेना ही था लेकिन जब मैने स्वय ही वर्मा सा० के यहाँ चलने की बात कही तो उन्होने एक शर्त मेरे आगे रख दी और वह यह कि वहाँ मै किसी को छुऊँ नही क्योकि वह बार-बार नहाने की अवस्था पार कर चुकी है।

मैने कहा—मौसी, अगर मै किसी को छू भी लूँ तो तुम मुझे मत छूना, बस।

अपनी जगह से उठकर मौसी एक कोने की ओर बढी, मुँह मे भरे हुए पान की पीक की एक मोटी पिचकारी लगायी, सिर का आचल ठीक किया और आगे हा ली।

इमली के बडे पुराने, घनी छाँव और मोटी-मोटी गठानो वाले पेड की नन्ही पत्तियो वाली टहनियाँ जहाँ छत पर झुक गई है, उसके आगे तहसील के बाबुओ के क्वार्टर्स चले गए है। उसके छोर पर ही रनजीत वर्मा का मकान आता था।

वर्मा सा० आबकारी विभाग मे काम करते थे। स्वभाव से बडे शान्त, कम बोलने वाले और सीधे-सादे। छोटी जगहो मे अधिकारियो और बाबुओ आदि मे प्राय गुटबदी हो जाती है और एक दल का दूसरे दल से बडा मन-मुटाव चलता रहता है। मन बहलाव के लिए क्लब या, सिनेमा के अभाव की पूर्ति ताश की बैठको से की जाती अत प्रतिदिन तहसीलदार या पी० डब्ल्यू० डी० के स्थानीय अधिकारी के घरो मे ब्रिज के बहाने तहसील के प्राय - प्राय अधिकाश कर्मचारी बट जाते और वही खेल और हँसी-ठहाको के बीच एक दूसरे के दल की आलोचना-चर्चा होती रहती।

वर्मा सा० ने एक तो ताश के खेल को कभी अच्छा नही समझा और दूसरे किसी भी दलबन्दी मे अपने को शामिल करने का उनका स्वभाव नही था। अवकाश के समय की शाम वह नदी के किनारे दूर-दूर तक टहलने और रात के कुछ घन्टे अपने पाच साल के शानू के साथ खेलकर बिता देते। अवस्था मे वह पैतालीस पार कर चुके थे। उनसे भी अधिक सन्तान का लोभ उनकी दूसरी पत्नी (जो अठाइस से अधिक की न थी) रमोला को था। उनकी पहिली पत्नी का देहान्त प्रसव मे ही हो गया था? उसके बाद बच्चा भी नही रह पाया। रमोला से उन्होने कई बरस बाद ब्याह किया था। शानू ढलती उम्र का था। अक्सर रमोला कहती कि वे लोग निसतान ही मर जाने का भाग्य लेकर आये थे। शानू तो भटककर उनकी गोद मे आ गया। बेऔलाद लोगो के घरो में, विशेषकर उतरती

उम्र के समय, जो निर्जीव सन्नाटा छा जाया करता है वैसा वातावरण वर्मा सा० के यहाँ कभी नही आ पाया।

बुझते चिराग की लौ आदमी से अपनी जिन्दगी के लिए जितनी सावधानी की माँग करती है, एहतियात के उन नर्म परो की छाँव मे शानू ने साँस पाई थी। पाँच साल की उम्र तक भी उसके गले और बाजुओ से काले डोरो वाले गडे-तावीज छूट नही पाए।

पर जिसकी साँसो का निपटारा हो चुका उसके लिए क्या ?

कुछ दिनो से शानू को बुखार आ रहा था और वर्मा सा० दौरे पर थे। दौरे पर जाने से पहिले वर्मा सा० ने डाक्टर को दिखलाकर दवाएँ लिखवा ली थी और रमोला और मधु को समझा दिया था कि शानू को समय पर दवाई पिला दिया करे।

मधु वर्मा सा० की भाभी थी—अधिक से अधिक पैतालिस की। उनका रहना-सहना भी वर्मा सा० के साथ ही होता था। वहाँ वालो ने न तो उनके पति को कभी देखा और न ही मधु को कभी अपने मायके जाते सुना। अपनी आठ बरस की एक बच्ची के साथ वह वर्षो से (रमोला के ब्याह होकर आने के पहिले से) वर्मा सा० के यहाँ रही आयी। कहा जाता था कि मधु का पति पहिले कोई छोटा-मोटा अफसर था पर बाद मे पागल हो गया और तब से मधु की देख-रेख वर्मा सा० ने ही की है।

वर्मा सा० के जाने के बाद शानू ने केवल तीन खूराक दवाई ही पी। चौथी खूराक मधु ने अपने हाथो से पिलाई और काम मे लग गयी। उस समय रमोला पडोस मे थी। कोई घटे भर बाद लौटी तो घर मे कुहराम मच गया। रमोला शानू पर पछाडे खा-खाकर गिर रही थी। मधु जब भागी-भागी आयी तो रमोला फूट पडी और चिल्लाकर रोई—

—मधु दीदी, तूमने शानू को कौन-सी दवा पिलाई ?

क्षण भर मे सब कुछ समझ मे आ गया। दवा की शीशियो पर निगाह गई। शानू की दवा की शीशी की आखिरी खूराक जैसी-की तैसी थी और जो शीशी खाली थी उसमे जहर का लेबेल अब साफ-साफ

दिख रहा था बडी भाग-दौड हुई। पूरी तहसील इकट्ठी हो गयी पर सब व्यर्थ हो गया और शानू गडे-तावीज के सारे बधन तुडा कर चला गया।

उसके बाद फिर वर्मा सा० का शाम का घूमना नही हुआ। आफिस के बाद के समय मे वह बरामदे के कोने वाली कुर्सी मे धँसे चुपचाप एक ओर ताका करते और बीडी पिया करते। शानू की याद करके रमोला रोती तो उसे फटकार देते, मधु शानू की बात करती तो उसे गहरी आँखो से घूर कर चिडचिडा उठते और मित्रो-परिचितो मे से कोई शानू की मौत का शोक मनाता तो बडी उदास और कडवी आँखो से देखकर फिर बच्चो की तरह रो पडते।

अचानक मौसी बोली—वर्मा सा० का जी यहाँ बिल्कुल नही लगता। सुनती हूँ कि वह बडी लम्बी छुट्टी पर जा रहे है। और केवल पल भर बाद ही, मेरे कुछ कहने से पूर्व उन्होने कहा—

मधु ने यह ठीक नही किया विजया। ऐसा लगता है जैसे शानू का दुख वर्मा सा० को घुलाकर छोडेगा।

जवाब मे मुझसे कुछ नही कहा गया।

वर्मा सा० का मकान आ गया था। लगातार इतना फासला धूप मे तय करने के कारण मौसी का चेहरा तमतमाकर सुर्ख हो गया था और होठ पपडा गये थे। प्रतिदिन की तरह वर्मा सा० बरामदे की कुर्सी मे धँसे बड़ी उदास आँखो से हर आने और सान्त्वना देने वालो को जवाब दे रहे थे।

मौसी ने अपने सिर का आँचल ठीक किया, बरामदे के अन्दर पाँव रखा और पास ही की रस्सी मे झूलते कपडो से बचती-बचाती भीतर हो गयी।

रमोला खाट मे लेटी हुई थी और पास-पडोस की तमाम औरते इर्द-गिर्द जमा थी। प्रत्येक के चेहरे मे दुख, आँख मे आँसू और होठो मे पछतावे के बोल थे। रमोला क्षण-प्रतिक्षण दुख और उन्माद मे शानू को पुकारती-कराहती विलाप कर रही थी। मुझे और मौसी को आयी देख

रमोला फिर बिलख पडी ।

दूसरो के दुख मे दुखी होना और बात है और आँखो मे आँसू ढाल देना और । मै चाहने पर भी न रो पायी लेकिन कमरे तक आते-आते मौसी की आँखे भरने लगी थी । उन्हे देखकर जब रमोला रोई तो मौसी से नही रहा गया और कमरे का वातावरण विलाप, सिसकियो और आँसुओ से भर गया । वहाँ इतने सारे लोगो मे पत्थर बनी जमीन मे धँसी-धँसी-सी सूखी आँखे लिए मधु बैठी थी । मधु दीदी को देखकर मै धक-सी रह गयी ।

वहाँ आने के बाद एक माह के बाद ही वैसे मेरा सबो से परिचय हो गया था लेकिन मधु दीदी को बहुत दिनो के बाद किसी उत्सव के अवसर पर देखा था । वह किसी के यहाँ आती-जाती नही थी लेकिन बावजूद इसके बस्ती भर मे सबसे अधिक चर्चा मधु दीदी की ही थी ।

पहिली बार मौसी ने ही मधु दीदी की और वर्मा साहब की चर्चा करते हुए बतलाया था कि लोग उनके सबध को सदेह की निगाह से देखते है । उनके विषय मे बहुत सारी बातें कही-सुनी जाती थी कि मधु को अपने पागल पति का दुख नही । पैंतीस की होकर भी अपने को जवान समझती है । अपनी लडकी से अधिक अपनी चिन्ता करती है । सादी साडी मे दिखती नही । कलाई भर-भर चूडियाँ पहिनती है । उसकी आधी पीठ और आधा सीना हमेशा ब्लाउज के बाहर होता है । वर्मा साहब जब दौरे पर होते है तो उन दिनो को छोडकर शेष दिनो मे अक्सर रात मे ही उनका सजना-सवरना होता है । अपने नये फौशन का जूडा और उसमे सजे मोगरे के फूल दिखाने के लिए सिर खोले रखती है . अफ़सरो के घर के लोगो का घर-द्वार छोडकर नदी-तालाब की खुली जगहो मे नहाना क्या अच्छा लगता है ? और तो और वह और वर्मा साहब एक दिन दूर के किसी घाट मे एक साथ तैर-तैरकर नहाते और एक दूसरे पर पानी उछालते देखे गये ।

उत्सव के हो-हल्ले मे मेरा और मधु दीदी का साथ अधिक देर का नही हुआ लेकिन उन थोडे-से पलो के साथ ने पहले सुनी सारी बातों को मन से

धो दिया और उस धुले निष्कपट मन मे मधु मधु दीदी बनकर आयी । मधु दीदी सचमुच बडी सुन्दर थी । पैतीस की होने पर भी बीस-पच्चीस से अधिक की न लगती । चाहे जैसा भी कपडा हो, उन्हे खूब फबता था। स्वभाव बडा ही सरल, मिलनसार और हँसमुख । जरा-जरा-सी बात पर हँस उठती थी और हँसती ही चली जाती थी । अपने पति के पागलपन का दुख, दूसरो के आसरे अपने और अपनी बच्ची के निर्वाह को समस्या और लोगो की ढेर-सी कडवी बाते सुनने पर भी जाने इतनी हँसी मधुदीदी ने कहाँ से बटोरी थी । उस दिन की मधु को आज मै अपने मन से धुँधला ही नही पाती ।

एक बेवा-सी दुपहरी अपनी तपिश समेटे दरख्तो की घटती-बढती छाँवो मे अधलेटी-सी पडी थी । एकान्त सन्नाटे के स्वर उस रीते वातावरण को खुरच-से रहे थे । उन क्षणो मे मन मे अकारण उठने वाला दर्द ऐसा था जैसे कोई अधसूखे घाव की परत नाखून से उधेड रहा हो

उस दिन मधु दीदी मेरे पास बडी देर तक बैठी रही । चर्चा-आलोचना, ताने-उलाहने और कई प्रकार की बातो को लेकर वह मुस्कुराती रही फिर पास की दीवार के उस हिस्से मे, जहाँ की पलस्तर उखड गयी थी और आध इच का गढा हो गया था, उँगली फेरती बोली—

दीवार का भी पलस्तर उघड जाता है तो लोग बदसूरती और गड्ढा ही देखते है । मै सोचती हूँ विजया, मेरा जीना कम है, मरना अधिक । दुख की शिकायत करने का स्वभाव मेरा नही । स्वभाव के साथ जो मन मिला है, उसकी बात करती हूँ । जितना हँसना जानती हूँ उससे अधिक दुख करना मुझमे ही है इसलिए जिस दिन हँसना भूल जाऊँगी, उसी दिन मर भी जाऊँगी ।

पलक-भर के लिए मधु दीदी की आँखो मे पीडा की गीली झलक चमकी पर दूसरे क्षण उनके मोगरे की तरह महक उठने वाली मुस्कुराहट की रेखाओ ने सब कुछ लीप दिया ।

टूटकर बह गयी उसी मधु को आज मै देख रही थी । उस बहाव ने

मधु दीदी को जिस जगह लाकर छोड दिया था, वहाँ वह मेरे लिए अपरिचित-सी लग रही थी। मैंने जिस मधु दीदी को उत्सव के अवसर पर जाना, वह क्या यही थी ?

सहमा मौसी ने मधु दीदी को सुनाते हुए रमोला से कहा—

—तुम्हारे नसीब मे शानू नही था रम्मो बेटी। अब बिचारी मधु का भी क्या दोष। जानबूझकर तो जहर नही पिलाया। आखिर उसकी कोख मे भी तो एक औलाद है।

जाने रमोला को क्या हुआ, अचानक फूत्कार उठी—

—चापलूसी किसी और के सामने करना मौसी। मै तुम्हे भी जानती हूँ और मधु को भी। शानू मेरे नसीब मे न हुआ न सही। मैं औरो की तरह दूसरो की औलाद से ही अपनी कोख ठढी करने वालो मे से नहीं हूँ

कहती-कहती रमोला रोने लगी। बात बेमानी थी पर मौसी सन्न रह गयी और फटी-फटी आँखो से ताकने लगी। न ठीक से देखते बन रहा था न गर्दन झुकाते। न उठते बन रहा था न बैठते।

उस असह्य वातावरण को तोडती हुई मधु दीदी अचानक उठी और बिना किसी से कुछ बोले, पल्लू सिर पर रखती दूसरे कमरे की ओर बढ गयी।

लौटते मे रास्ते भर मौसी कुछ नही बोली। जब घर आया तो मुझे दरवाजे तक छोडा और बडी झुँझलाहट-भरी आवाज से बोली—

—अरे, एक बित्ते-भर का लौडा ही मर गया तो कौन पहाड टूट गया नसीबोजली, दूसरो पर तान तोडती है।

मेरा ख्याल है मौसी की आवाज भारी हो गयी थी, खखारकर उन्होंने गला साफ किया और मेरी ओर देखे बिना वैसे ही लौट गयी।

तीन महीनो की लम्बी छुट्टी पर जाने के बाद वर्मा साहब फिर वहाँ वापस नही लौटे। वही से किसी तरह अपना तबादला करवा लिया।

उसके पहिले से ही हमारे तबादले की बात चल रही थी अत जब पता चला कि अम्बिकापुर जाना होगा तो मै इनके चार्ज देने के पहिले ही दमोह-आ गयी। एक तो मायके मे बहुत दिनो बाद आयी थी और दूसरे कुछ ऐसी परिस्थितियाँ लगातार आती रही कि लगभग तीन-चार माह दमोह छोड नही पायी। वहाँ से निकली तो सीधे अम्बिकापुर ही जाना हुआ। मधु दीदी से वह मिलना आखिरी मिलना था।

आज जो हमारे पास है उसके मोह मे हम यह सोचते है कि कल अगर आज-सा न हुआ तो जिन्दगी वीरान हो जाएगी लेकिन जब कल आता है तो आज सरक कर बिल्कुल ही धुँधला और महत्वहीन हो जाता है। जगह के मोह के साथ मधु दीदी का मोह भी मन मे गहरा नही रहा।

अनेक जगहो मे अनेक लोगो से भेट होती है—कुछ से बरबस मिलना पडता है, कुछ से सिर्फ मिलने के लिए लेकिन एक-दो शायद घाव लगाने के लिए ही मिलते है। मधु दीदी की स्मृति मै उस जगह के साथ ही छोड आयी थी लेकिन समय और भौगोलिकता की दूरी को लाँघकर उसे यहाँ भी पहुँचना था। नही तो मौसी के देवर की शादी न तो अम्बिकापुर मे लगती न ही मौसी के द्वारा मुझे मधु का घाव लगता।

लगभग साल भर बाद मै मौसी को देख रही थी लेकिन अतर जैसा कुछ नही देखा। वही सफेद बगुलपखी और चौडी किनारे वाली साडी जिसका चाबियो वाला छोर उनकी पीठ मे लटकता था, गले की जन्जीर, चूडियाँ, पान से रगे सुर्ख होठ, थोडी धूप मे ही तमतमाए गाल और उनको बीमारी का रोना!

वर्मा साहब की बात छिडते ही मौसी ने एक गहरी साँस लेकर कहा—वर्मा साहब अब सचमुच बूढे हो गये। रमोला उनके पास से अधिक मायके मे रहती है। फिर जरा रुककर मौसी बोली—

—पाप-पुण्य को भले तुम न मानो विजया लेकिन यह मानना ही पडेगा कि आदमी को अपनी करनी का फल यही मिल जाता है। बताओ तो मधु क्या अभी मरने योग्य थी?

मेरी ऊपर की साँस ऊपर और तले की तले रह गयी। जैसे बँध-सी गयी आवाज को तोडकर पूछा—मधु दीदी मर गयी, कब ?

—अरे, तुम्हे क्या नही मालूम ?—मौसी ने आश्चर्य से मेरी ओर देखकर कहा—वहाँ से तबादले के बाद मधु को वर्मा साहब ने निकाल दिया। मधु कुछ दिन इधर-उधर भटकी फिर किसी अकेले और विधुर किराने की दूकान वाले के यहाँ घुस गयी।

क्षण भर के लिए मौसी चुप हो गयी। कमरे के वातावरण मे एक गहरा और खलने वाला मौन समा गया। मेरी ओर गहरी आँखो से देखकर मौसी बोली—मधु के लिए मै दुख नही मनाती। उसकी बेटी के भाग्य पर तरस आता है। वह अब बारह-तेरह की हो गयी है और वर्मा साहब के यहाँ रह रही है। एक-दो बरस मे वह भी क्या किसी के साथ नही भाग जाएगी ?

उन क्षणो की अपनी स्थिति का ज्ञान मुझे नही है। मौसी आगे क्या कहती रही, यह मैने नही सुना। मेरे मन के भीतर ढेर-से दर्द मे डूबी मधु उभर-उभर आने लगी—

—दुख की शिकायत करने का स्वभाव मेरा नही। स्वभाव के साथ जो मन मिला है उसकी बात करती हूँ। जितना हँसना जानती हूँ उससे अधिक दुख करना मुझमे ही है इसलिए जिस दिन हँसना भूल जाऊँगी, उसी दिन मर भी जाऊँगी।

सीले - सूखे आँचल

कोहरे मे सिमट गई सर्दियो की सुबह, जबकि उजाले ने ठीक से अपने पाँख भी न खोले हो, यदि किसी को सेन्ड-आफ् देने जाना पडे तो इससे बडी सजा मेरे लिए और दूसरी नही। ऐसे मौकों पर जितना क्रोध सफर करने वालो पर आता है उससे कम बस वालो पर नही आता। उस दिन ऐसी ही ठिठुरती सुबह अपनी हड्डी-हड्डी को कपाती भाभी के साथ मैं बस-स्टैण्ड पहुँची तो एक्सप्रेस छूटने मे पौन घटे की देर थी। पता चला आज आध घटा लेट जाएगी। भीतर से जितनी कोफ्त हो रही थी बाहर से उतनी मुस्कुराहटे लपेटकर मैंने भाभी का टिकिट लिया, सामान चढवाया और उन्हे ठिकाने पर बैठाकर बस के छूटने की राह देखने लगी।

कोहरा उतना ही गाढा था, धूप की पलक अभी भी अधमुँदी थी और पेड-पौधे मकान और दूकाने—सब उस बर्फ़ीली चादर मे लिपटे थरथरा रहे थे। भाभी ने बस की खिड़की के परदे गिरा दिए थे, अन्दर सीट पर बैठने के बाद हाथ के मोजे भी चढा लिए।

अचानक बस के दरवाजे पर जोर का धक्का पडा और उसके पल्ले खुलने के साथ ही हिमानी हवा के कई-कई झोके बस के भीतर घुस आए। भाभी ने झल्लाकर जलती हुई आँखो से आने वाले को देखा। शायद डाँटती पर कम्मो, शिवराम और उसके दो और बच्चो को एक साथ ही घुसते देखा तो चुप लगा बैठी।

भीतर आकर एक क्षण के लिए कम्मो ठिठकी, हम लोगो की ओर पलक-भर देखा फिर बिना कुछ कहे जरा दूर की एक सीट मे बैठ गई। अपने दोनो छोटे बच्चों को सम्हाले हुए शिवराम भी कम्मो के पीछे-पीछे जाकर उसके पास ही बैठ गया।

भाभी ने मेरी ओर देखकर यह जानना चाहा कि ये लोग कहाँ जा रहे है लेकिन मै स्वय कुछ नही जानती थी। मैंने शिवराम की ओर देखा लेकिन उससे पूछने का साहस नही हुआ। सर्दी ज्यादा थी। शिवराम की सबसे छोटी बच्ची केवल एक उटु ग-सी फ्राॅक (जो कमर भी पूरी तरह ढँक नही पाती थी) मे थी और कँपी जा रही थी। उसे अपने से बुरी तरह चिमटाए शिवराम अपने जिस्म की गर्मी देने की कोशिश कर रहा था। उस घडी भाभी का गर्म कपडो मे अच्छी तरह ढंके-मुँदे होने के बाद भी हाथ-पैर के मोजे चढा लेना मुझे अच्छा नही लगा। जाने क्यो इस तरह की भावना आने लगी कि भाभी ऐसा करके मुझे भी लज्जा मे डुबो देना चाहती है।

मैंने किसी तरह कम्मो की ओर देखकर पूछा—कहाँ जा रही हो कम्मो ? जवाब मे कम्मो ने कुछ नही कहा निमिष-भर के लिए मेरी ओर तकने के बाद अपने पिता शिवराम की ओर देखने लगी। शिवराम ही बोला—

—इन्हे इन लोगो की नानी के पास छोडने जा रहा हूँ। मै नौकरी करूँ या इन लोगो को सम्हालूँ ?

शायद शिवराम की आवाज भर आई थी, कहकर उसने दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

मुझे लगा जैसे जीवन मे जितना दुख शिवराम ने मालती को दिया था उससे कई गुनी अधिक वेदना मे मालती आज शिवराम को छोड गई है। ड्राइवर की सीट के सामने वाले काँच मे ओस जम गई थी। पहले तो काँच धुँधला होकर किसी तालाब के ठहरे हुए जल की तरह लग रही थी लेकिन अब बूंद-बूँदकर कोहरा फिसल रहा था। अचानक ही मुझे अहसास हुआ जैसे कोहरे के नर्म-नर्म गालो मे लिपटी-लिपटाई मालती अभी-अभी बस का दरवाजा खोलकर घुस पडेगी और गौरइयो के नन्हे-मुन्ने पावो मे फुदकने से बज उठने वाले घुँघरुओ जैसी हँसी बिखेर कर पछ बैठेगी—

—भाभी, कहाँ जा रही हो ? भाभी, कहाँ जा रही हो ?

मालती को पहिली बार मैंने अपने ब्याह के मण्डप मे ही देखा था। सेमल के एक बीज मे अटका रुई का टुकडा जाने कहाँ और किस पेड़ से भटककर दूर-दूर तक तैरता चला जाता है। उसके ठहराव को हम नही जानते। मालती शायद एक ऐसी ही भटकती रुई का गाला थी जिसे शिवराम ने अपनी हथेली मे झेल, उसका बीज अलग कर नोचा और फेंक दिया।

मेरे जहन मे पाँच बरस के पहिले की मालती कोशिश करने पर भी नही उभरती। बस वही मालती जो कल की थी और आज की नही है, आकर मेरे सामने खडी हो जाती है

दुख की घनी छाँव लिए आँखे और इमली के दरख्त के तने की तरह पपडाए होठ जिनमे हँसी की आभा आती भी है तो बुझी हुई राख की तरह ठण्डी, बेजान और गीली लकडियो से उठने वाली धुएँ की तरह कडुवी।

गर्मियो की उमसाती साँझ थी। आँगन मे बच्चो का कोलाहल, मण्डप मे स्पीकर की चीख, बावर्चीखाने मे देग-नगारो की आवाज और कई तरह की औरतो-लडकियो के शोर-शराबे और छेदती-भेदती आँखो के बीच मे बैठी थी।

मुँह दिखाई थी। ब्याह के भारी जोडे और महजर से लदी हुई पलक तक बन्द किए मुझे घटो बैठना था। थोडी-थोडी देर मे मेरा घूँघट हटता,

ठोडी पकडकर मेरा चेहरा उठाया जाता और फिर मै उँगलियो के चटखने और रुपये की खन् की आवाज के साथ अपने रूप की प्रशसा सुनती । सब केवल देख ही रहे थे, मुझे समझ कोई भी नही रहा था । बिदा के पलो मे माँ-बाप का दुख ब्याह को खुशी को कितना कम कर देता है, यह मै नही जानती । इतना अवश्य जानती हूँ कि गर्मी की रातो और शामो मे घुटता दम लिए जो घटो बैठना पडा है उसने अवश्य मेरी खुशियो को थोडा कम कर दिया है । सच तो यह था कि उस घडी जो आँसू आ रहे थे वह दुख के कम पर झुँझलाहट और परेशानी के ज्यादा थे । मेरे पास बैठी लड-कियाँ पखा जरूर झल रही थी लेकिन हवा मेरे जिस्म तक भेद ही नही पाती थी सिर्फ महजर का पल्ला-भर हिलता था । वह स्थिति कोई एक घटे से चल रही थी और मै मन-ही-मन उन भोडे रस्मो-रिवाजो को कोसती हुई दम साधे बैठी थी ।

एकाएक मेरा घूघट बडी बेतकल्लुफी से पलट, दोनो हथेलियो मे मेरा चेहरा लेकर, बडे मीठे अन्दाज से कोई बोला—

—सिर्फ चेहरा नही, मै तो आँखे भी देखूँगी । देखूँ तो, आँखो मे कितना प्यार लेकर आई हो ।

झूठी प्रशसा और खुशामदाना बातो के बीच यह अन्दाज और आग्रह अजीब और चौकाने वाला था । मै बडी प्रभावित हो गई और कुछ उत्सु-कतावश भी मैने आँखे खोल दी—वही मालती थी । इकहरा जिस्म, साँवला रग, चेहरे के नक्श भले और सुन्दर दाँतो की उजली रेख ।

उस दो घडी के साथ मे ही मालती मुझसे बहुत कुछ ले गई । कभी-कभी ऐसा होता है कि कुछ चेहरे एक बार ही सामने आकर मन मे अटक जाते है और जी मे ढेर-सा प्यार उमड आता है । परेशानी के उन क्षणो मे ठीक तरह शायद वही मुझे समझ पाई । अम्मी से आग्रह कर बरबस ही मुझे वही से थोडी देर के लिए दूसरे कमरे मे उठा ले गई । वहाँ मुझे बैठाकर महजर अलग किया और एक पखा लेकर मेरे पास बैठ गई । बात-चीत का सिलसिला ढूँढने की उसे आवश्यकता नही पडी, मेरे सिर से

दुपट्टा अलग कर हँसती हुई बोली—अब तो तुम लडकी नही रही, दूल्हे वाली हो गई हो। हमारे यहाँ आज से लडकी खटने के लिए तैयार हो जाती है।—फिर जरा रुककर बोली—ब्याह का सुख पीहर के सुख को मेटकर आता है, यह न भूलना।

तुरन्त कुछ कहते मुझसे नही बना। जवाब के लिए मैंने मालती को निमिष-भर ताका। उसके चेहरे के भाव मै समझ सकूँ, ऐसी उन दिनो मै नही थी केवल इतना ही अनुमान लगाया कि मालती ने शायद पीहर का सुख बहुत जाना होगा। मेरी पलक उठते ही कहा—अनवर भैया से मै बडी हूँ, इसलिए तो तुम मेरी बहू हुई न ?

जिसे हम मन देते है, जी का ढेर-सा प्यार बाँटते है कभी-कभी उससे ही हमारा कोई बाहरी सम्बन्ध नही होता। लोगो से मिलने-जुलने और उठने-बैठने की भी एक सीमा है जिसके बाहर आते ही हम चर्चा-आलोचना के विषय बन जाते है। मै सोचती हूँ कि रहन-सहन और रख-रखाव आदमी के मन को तो नही बदल सकता पर अम्मी और भाभी दोनो इस मामले मे मुझसे अलग पडती थी। अम्मी ने तो मालती के सामने ही कई बार मेरे बैठकर गप्पे मारने पर रोष प्रकट करते हुए यह बात कह ही दी कि दोस्ती बराबर वालो मे होती है, बडे-छोटे के बीच नही।

बरबस मैंने अपने को उस सीमा मे किया तो लेकिन मालती के लिए अपनी उत्सुकता को दबा नही पाई।

एक दिन अनवर को, जानने के लिए उनसे पूछा—यह मालती कैसी लडकी है ? अनवर बोले—लडकी कहाँ, वह तो चार बच्चो की माँ है।

—वही सही। मै यह पूछती थी कि ये लोग कैसे हैं ? मालती का शौहर क्या करता है ?

सभवत अनवर को इन सारी बातो से कोई दिलचस्पी न थी। जैसे ऊबकर, कुछ इस अन्दाज से कि मै बडा ही कीमती वक्त बेकार की बातो मे बरबाद कर रही हूँ, बोले—शिवराम किसी सरकारी दफ्तर मे चपरासी

है। चार-चार बच्चे है लेकिन उसे घर की परवाह नही रहती। शराब और जुआ का आदी है और अक्सर सारा नशा मालती पर तोडता है।

एक माह से अधिक नही बीता होगा कि एक दिन शाम के कोई आठ बजे मालती अपने बच्चो के साथ आई और अम्मी के पास बैठ गई। वह समय बैठने का नही था और इस वक्त मालती खाना बनाया करती थी फिर भी वह एक घटे से अधिक के लिए बैठी रह गई। उस बैठक मे मै भी थोडी देर के लिए शामिल हुई। अम्मी और मालती दोनो की बाते एकदम उखडी-उखडी और बेबुनियाद-सी लग रही थी। बात के सिलसिले को जैसे बरबस ढकेला जा रहा था पर उसका सिरा जहाँ से छुआता वही से सिगरेट के जले हुए गुल की तरह भड जाता। कुछ करना है शायद इसलिए अम्मी पानदान खीच ऊबकर सुपारी कतरने लगती है। स्वर मे न जिज्ञासा है और न उत्सुकता लेकिन प्रश्न है—

—कम्मो को स्कूल भेजती हो ?

—नही तो। वह गई तो बच्चो को कौन सम्हालेगा ? एक को गोद मे लेकर काम कर लूँ लेकिन औरो को सम्हालना और खाना बनाना एक साथ मुझसे नही होता।

मौन और चुप्पी जिसमे केवल सुपारी के कतरने और सरोते की आवाज के सिवा देर तक और कोई स्वर नही आता।

दूसरी बात मालती की है—इस साल कितनी गर्मी पडने लगी है।

—हूँ।

—दिन मे कितने पान आपको लगते है ? अनवर भैया तो शायद पान नही खाते।

—हाँ, बीस-पचीस खा लेती हूँ।—अम्मी कहती है—यह लत तो अब मेरी जान के साथ जाएगी।

जहाँ हम लोग बैठे थे उस बरामदे से लगा ही किचन था। भीतर शायद भाभी थी पर दरवाजा भिडा हुआ था। थोडी ही देर मे वहाँ से तेल मे कुछ छोड देने की छन्-छन् की आवाज और तवे मे करछुल से

खुरचे जाने के स्वर के साथ ही अडे और प्याज के एकसाथ तले जाने की मीठी सोंधी खुशबू आई। उस महक मे सुपारी-सरोते का स्वर मिला और लकडियो के उठने वाले धुएँ के कई टुकडे वातावरण मे घुटन भरने लगे।

—सूरजमुखी के बहुत पौधे लगा रखे है ?

मालती के इस प्रश्न पर जवाब के लिए अम्मी ने बाहर आँगन मे ढेर-से लगे सूरजमुखी के खिले-खिले चेहरो पर आँखे डाली और मुस्कुरा दी।

मालती बोली—आँगन यदि छोटा हो तो गर्मियो मे मोगरे बडे अच्छे लगते है।

अचानक मालती की गोद का बच्चा मचल पडा और जिद मे आकर उसके सीने को दोनो हाथो से मारने लगा। मालती, उसे जाँघ को हिलाती हुई मनाने की कोशिश करने लगी लेकिन बच्चे का स्वर थमा नही तो जैसे ऊबकर ब्लाउज का सिरा उठाया और सोना खोल, बच्चे के मुँह मे दे, साडी का आँचल उस पर डाल दिया।

तभी नौकरानी शायद बाजार से लौटी और हमारे सामने से होती हुई, किचन का दर्वाजा ढकेलती अन्दर हो गई। दरवाजे का पल्ला खुला तो बिल्कुल ही सामने पसर कर बैठी खाना खाती हुई भाभी दिखाई दी। उन्हे यूँ अचानक दरवाजा खुल जाने की आशका न थी पल भर के लिए चौककर मालती और अम्मी की ओर देखा फिर सिर झुका कर मजबूरन खाने लगी। दरवाजा फिर बद नही किया जा सका।

मालती की गोद के पास ही लगे दूसरे बच्चे ने किचन मे चुपचाप ही सिर झुकाए खा रही भाभी की ओर देखते हुए कहा—माँ भूख लगी है, घर चलो। मालती ने उसकी बात अनसुनी कर दी और अम्मी से बेसिल-सिले की बात करती हुई बडी देर तक उसे टालने की कोशिश करती रही लेकिन उसके घर चले चलने का आग्रह रुका नही तो उसने झल्लाकर उसकी पीठ मे एक धौल जमा दी। बच्चा पीठ मलता हुआ बडी जोर से चिल्ला पडा और फिर अपने पाँव खुरच-खुरच कर रोने लगा।

अम्मी को सुनाते हुए मालती ने कहा—नदीदे, चाहे जितना खाएँ,

पेट ही नही भरता । फिर मेरी ओर देखकर बोली—अभी थोडी देर पहिले ही ठूँसकर आए है ।

मालती का चेहरा देखने का साहस फिर मुझे नही हुआ । मै वहाँ से उठ गई ।

उसके हफ्ते भर के बाद की दोपहर थी—अप्रैल की चिलचिलाती तपती दुपहरी । परिन्दो की आवाज कही से आती भी थी तो घरो के ठढे सायो और घने पेडो की लुकी-छिपी टहनियो मे से और आहट के नाम पर कुछ था तो स्वरहीन सन्नाटे का लबा निश्वास । गर्म लू की आँच मुझे अधिक देर दरवाजे के पास खडी नही रहने दे रही थी । सडक सूनसान और अकेली थी—अनब्याही बूढी की माँग की तरह वीरान । तभी आइने की तरह झिमिलाती धूप मे मैने देखा अकेली सडक मे एक सात-आठ साल की बच्ची फुर्ती से चली आ रही थी ।

पास आने पर देखा तो मालती की बडी लडकी कम्मो थी । अपने एक हाथ से छोटी और जल-जलकर काली पड गई पतीली वह कधे पर उठाए हुए थी । उस पर ढकने के रूप मे किसी बच्ची की पुरानी और फटी फ्रॉक ढॅकी थी ।

मैने पूछा—कम्मो कहाँ गई थी ?

कम्मो ठिठककर खडी हो गई । उसकी फ्रॉक मैली, सीना खुला (बटन नहीं थे) बाल रूखे थे और शायद उन पर तेल कई दिनो से नही पडा था। चोटी पिछले दिन की गुँथी हुई थी जिसमे रिबन की जगह किसी साडी की किनार बँधी थी । यह वहा लडकी थी जिसके विषय मे मालती ने कभी बताया था कि शिवराम अपने चारो बच्चो मे सब-से अधिक इसी को प्यार करता है ।

कम्मो ने मेरे प्रश्न का उत्तर दिया—फूआ के यहाँ गई थी ।

धूप से जमीन शायद बहुत तप गई थी । कम्मो के पाँव नगे थे और वह सडक पर खड़ी-खडी हर क्षण अपने पाँव बदल रही थी ।

लज्जित होकर मैंने कहा—भीतर आ जा। तेरे पॉव शायद जल रहे है।

—नही जाऊँगी। माँ रास्ता देखती होगी।

—यह पतीली मे क्या है ?

क्षणभर रुककर कम्मो बोली —खाना है। फूआ के यहाँ से छोटे बाबा के लिए ला रही हूँ।

मुझे बडी चोट-सी लगी और सब कुछ समझ मे आ गया।

मैंने पूछा—तेरे बाबू कहाँ है ?

इससे पहिले कि कम्मो मेरी बात का जवाब दे पास के घर से किसी बच्चे के रोने की आवाज आई और कम्मो, जैसे कोई बात भूल रही हो, ऐसे एकएक व्यस्त होकर मेरे प्रश्न का जवाब दिए बिना ही अपने घर की ओर तेजी से बढ गई।

मैंने जरा जोर से पुकारकर कहा—कम्मो, मालती को भेज देना।

दरवाजे की आड छुपती कम्मो ने जवाब मे केवल सिर हिला दिया। पता नही उसने मालती से मेरे यहाँ आने की बात कही या नही पर मालती नही आई।

पन्द्रह-बीस दिनो तक मालती से भेंट नही हुई। पडोस मे रहकर भी न तो मै मालती के घर जा सकी न ही मालती फिर कभी आई। अक्सर मुहल्ले वालो से या भाभी से शिवराम और मालती की बहुत सारी बाते सुनी जाती कि शिवराम आजकल बहुत पीने लगा है। रात को घर नही आता। तनख्वाह के पैसे जुए मे उडा देता है, आदि।

अक्सर महीने के पहिले हफ्ते उसके यहाँ बडा हल्ला मचता रहता। रोज ही दो-तीन लोग उसके घर पर तकाज़े मे डटे रहते जिनकी सारी चीख-पुकार और गालियाँ मालती को ही झेलनी पडती। इन अवसरो पर शिव-राम गायब रहता था। और तो और भाभी को शिकायत थी कि शिवराम नबरी बदमाश है। बाहर वालों की बात अलग अनवर को भी उसने फाँसा

देकर एक बार दस रुपये वसूल लिए और फिर कभी शक्ल नही दिखाई।

रात के कोई ग्यारह बजे थे और पूरे कस्बे मे तीरा-शबी का आलम था। अचानक मालती की बडी लडकी कम्मो की दहला देने वाली चीख सुनाई दी और वैसी ही चिल्लाती हुई कम्मो गली से बेतहाशा दौडती आई और मेरे पास आ बिलख-बिलख कर रोने लगी।

कम्मो के साथ जाकर मैने देखा मालती कै किए जा रही है। फर्श पर गिरी कै मे पीले लार-थूक मिले पानी के साथ छिटके-छिटके भात के दाने और मिर्च और टमाटर के सने-सनाए छिलके पडे थे। शराब की बडी तेज बदबू उस बद और छोटे से कमरे मे फैल रही थी।

मालती बिस्तर पर आँखे बन्द किए निढाल-सी पडी थी। मधुमालती की पखुडी मे जितनी पीलाहट और गर्मी की उमस-भरी पिछली रात की चाँदनी का चेहरा जितना कफनी होता है वह सब उस लुढकी हुई मालती मे मैने देखा। कमरे की चार फीट ऊँची दीवार का छप्पर अधिक ऊँचा नही था। ताक मे एक टीन की कालिख-पुती ढिबरी की बाती जले हुए गुल का भार सम्हाले आहिस्ते-आहिस्ते हिल रही थी। एक निर्जीव और बेसाँस वाली फिजा जिसमे थोडी देर के बाद मालती की हृदय-विदारक चीख ऐसे गूँजने लगी जैसे बडी और खाली देग मे अचानक गिरा हुआ लोटा इधर-उधर टकराता-गूँजता है। शिवराम रोज की तरह नही था लेकिन मालती से किसी तरह मालूम हुआ कि जैसी ज़िन्दगी वे लोग जी रहे थे उसमे चार बच्चे ही नही पल पा रहे थे फिर पाँचवे की गुँजाइश कहाँ। अत मालती ने किसी से सुनी-सुनाई बात के मुताबिक़ देशी शराब मँगवाई और सोडे के साथ पीकर अपना गर्भपात करवा लिया।

दूसरे दिन मालती मर गई। शिवराम केवल देखता रहा—अपने छोटे-छोटे बच्चो, बिलखती कम्मो, मालती के उतरे-बिखरे चेहरे और उसके गिर्द जुटी भीड को। जब मालती की देह सफेद कफन मे लिपटी, खुशबुओ मे बसी अर्थी मे लिटाई गई और शिवराम को चेहरा देखने के लिए बुलवाया गया तो मालती के थोड़े-थोडे खुले होठ और अधखुली आँखो मे सुरमे की

मोटी और उखडी हुई लकीर देखकर शिवराम से सम्हलना नही हो पाया। अपने चेहरे को घुटनो मे दे वह चिल्लाकर रो पडा—ऐ. ओ मालती, मुझे जीते-जी मार डाला रे...

कोहरे की नर्म चादर को चीर सुबह की पहिली-पहिली धूप अब झाँकने लगी थी। पेड-पौधे, मकान सब अब साफ हो गए थे और बस-ड्राइवर अपनी सीट पर आ गया था। शिवराम अपने एक बच्चे को लेकर नीचे गया हुआ था और पास के होटल से बासी चिवडा खरीद रहा था। कम्मो अपने दोनो हाथो की कैंची बनाकर सीने पर रखती हुई बगलो मे हथेलियाँ छुपाए बैठी थी। ड्राइवर अब हार्न देने लगा था भाभी को आदाब कर मै बस से उतरने लगी तो कम्मो ने आहिस्ते से मुझसे पूछा—भाभी कहाँ जा रही है ?

सवारियो की भाग-दौड और धक्कम धक्के मे मुझे जवाब दिए बिना ही नीचे उतर आना पडा क्योकि गाडी स्टार्ट हो गई थी।

बस जब वहाँ को जमीन को इच-इच-भर छीलती हुई आगे बढ गई और धूल के मुँह-चिढाते गुबार ने सामने का दृश्य दो घडी के लिए निगल लिया तो मै सोचने लगी कि अच्छा हुआ जो मै कम्मो को जवाब नही दे पाई। मै कैसे कहती कि ब्याह के आठ बरस बाद भी भाभी की गोद सूनी थी और बस वही एक आरजू लिए वह मजार-मजार चादरे चढाती भटक रही थी ?

डाली नहीं फूलती

फटे हुए बाँस का जमीन मे पटकने का स्वर गली से पार हुआ कि रात के तीसरे पहर का सन्नाटा अपने को जरा-सा झटककर फिर गली मे बैठ गया। लेटे-लेटे ही सबीहा ने बॉया हाथ बढाकर सिरहाने मे दबी ओढनी खीची और बेशुमार शिकनो और सलवटो समेत कधो पर डाल ली।

दीवार मे कील से अटके छोटे-से बेड-लैम्प की उजाड सूरत वाली रोशनी बडी मुश्किल से बाहर झाँकती थी। उसकी परछाई तक भी कमरे का दूसरा कोना नही पहुँच पाती, उससे क्या दिखेगा कि कौन है और कौन नही ? दूसरी ओर लगी बाजी की खाट की मसहरी के भीतर भी पहले-पहल कुछ नही दिखा लेकिन गौर से देखने पर यकीन करना पडा कि हालॉकि बाजी की मसहरी बराबर लगी थी, बेबी भी बराबर सो रही थी लेकिन बगल मे बाजी न थी।

लम्हा भर भी न गुज़रा होगा कि सबीहा को बाजू के कमरे मे सोए यूनुस भाईजान की

याद आई और होठो ही मे मुस्कुराते-मुस्कुराते सबीहा के जिस्म मे काँटे उग आए और वह काँप कर रह गई—हाय अल्लाह, बाजी को तो बुखार है न।

गली का सन्नाटा एकाएक फिर टूटा। बाजू वाले मकान के सामने सेहरी के लिए जगाने वाले कोई बडी अच्छी-सी नात पढ रहे थे। उनकी उँगलियो मे फँसे काँच के छोटे-छोटे टुकडो से गले के सोज मे डूबा और घुला-मिला एक अजीब और थरथराता-सा जो सगीत पैदा होता वह खूब अच्छा लगता, सच, खूब ही अच्छा लगता। दो मोटी, भारी पर मीठी आवाजे एकसाथ उठती, सन्नाटे को खगालती, रात के अँधेरे आँचल की सलवटो को मेटती.. मेटती और कही बिछल जाती. ।

उठते-उठते ही सबीहा फिर लेट गई। बाहर की आहट लेने पर लगा कि अभी तो बहुत रात बाकी है। इन लोगो का भी क्या है? बहुत-से घरो मे फेरी दे पाने की लालच मे रात के बारह बजते ही निकल पडते है। उनकी बला से अगर कोई आधी रात को ही उठकर सेहरी कर रोजा रख ले।

काँच वाले अभी सबीहा के घर के आगे ही निकले थे कि चौराहे पर रोज़ की तरह मुट्टो की आवाज गूँजी। रमजान के महीने मे सेहरी के लिए जगाने वाले और लोगो की तरह और सडको पर बाँस पटकती हुई मुट्टो भी चलती थी लेकिन किसी के मकान के आगे रुककर वह कभी कुछ नही पढती। बस गली मे आकर केवल एकबार ऊँची और मोटी आवाज़ मे अचानक जोर से पुकार उठती है—

डाली झुकी ई ई ई
पत्ते झुके ए ए ए ए
झुक गए पाँचो फूल।

बरसो हो गए इसके सिवाय मुट्टो से लोगो ने और कुछ नही सुना। वह मिसरा किस शेर का था, उसके क्या मानी हुए और मुट्टो उसे ही हमेशा क्यो दुहराया करती थी, यह कोई नही जानता। किसी ने जानने

की कोशिश भी शायद न की। पहिले जब मुट्टो कस्बे मे नयी-नयी आयी थी और जरा जवान-सी थी तो कुछ मनचलो ने इस मिसरे का बडा भद्दा, ऊटपटाग और गलत मतलब निकालकर लोगो के बीच फैलाया था। कुछ दिनो खूब अटकलबाजियाँ चली और अधेरे मे बहुत-से तीर फेंके गए।

वैसे मुट्टो इतनी पुरानी और मशहूर थी कि उसे न जानने वाला शहर का नया गिना जाता था। कौन-सा ऐसा घर था जहाँ मुट्टो की आवश्यकता न पडी हो? खुशी का मौका हो या गम की बात, मुट्टो को बुलाए बिना औरतो का काम ही नही निकल पाता। है भी वह हर फन मौला। कभी छठी-छिल्ले की दावत लेकर भटकती, कभी किसी ब्याह के मण्डप मे मीरासिनो की अगुवा बनी ढोलक पर थाप देती दिखाई देती तो कभी आर्तनाद-पुकार और रोना-पीटना के बीच सिर झुकाए आहिस्ते-आहिस्ते किसी जनाजे को गुसल देती नज़र आती। उसका न एक काम था और न एक ठौर।

माँगने वालो और फकीरों का कस्बे मे एक अलग-सा मुहल्ला था लेकिन मुट्टो उनके बीच कभी नही रही। सब लोगों से अलग-कलग, कस्बे की घनी आबादी से हटकर किसी अधेरी-अधेरी-सी कोठरी मे ही वह पडी रहती। बरसो से अकेली, सुनसान और उदास। (सिवाय उन कुछ दिनो के जबकि कही से एक बीमार-बीमार-सा युवक आकर उसके साथ रहने लगा था और उन दिनो मुट्टो दिखाई तक न देती थी।)

सबीहा के बासी होठो पर एक दर्द-घिरी रेखा काँपी सरकी और मुट्टो की पूरी तस्वीर निगाहो के सामने खडी हो गई। एक खास और अनोखा व्यक्तित्व है मुट्टो का। उम्र से लगभग ३६ की होगी, रग जरा गहरा काला, इकहरा जिस्म (दुबली कही जाय तो ज्यादा सही हो) निहायत निर्भीकता और बेपरवाही से चलती-फिरती और हमेशा मरदाना लिबास में रहती (प्राय कमीज़ और पाजामा पहिनती और पाजामे को ज़रा चढा कर नेफे के ऊपर कमर मे खोस लिया करती)।

उस उम्र और हुलिया मे भी जब तक वह युवक मुट्टो के पास रहा,

मुट्टो के बारे मे लोगो ने कई तरह की बाते कही । ऐसे अवसर पर कहने और सुनाने वालो को मुट्टो मुँह भर-भर गालियाँ देती—

—ऐ, क्या जमाना आ गया है लोग उम्र और रिश्ता तक नही देखते । और मुट्टो कुँआरी है तो क्या उस मरझल्ले लौडे के लिए मरेगी। ऐ, दीदे फूटे कहने वालो के, आग लगे उनकी जबान पर !

उस युवक से मुट्टो का जो भी रिश्ता रहा हो पर वह मरझल्ला भी नही रहा और मुट्टो फिर अकेली हो गई । एक ही लकीर मे पिटती उसकी जिन्दगी मे जो एकाएक परिवर्तन आ गए थे, वह फिर उसी पुराने ढर्रे पर आ गया और पहिले की तरह मुट्टो फिर से कभी-कभार के जुमा-जुमेरात को दिखाई देने लगी । किसी ऐसे ही एक जुमे को मुट्टो को अपने घर के सामने देखकर सबीहा उत्सुकतावश स्वयं निकल आई । देखते ही धक-सी रह गयी—मुट्टो क्या इतनी बूढी हो गई है ? कुछ यूँ लगा जैसे तीन-चार माह मे ही दस बरस की जिन्दगी जीकर मुटटो खडी हो !

जब तक वह नजरो से ओझल न हो गई दहलीज पर खडी-खडी सबीहा उसे देखती रही । मन भीतर-बाहर से भींगकर रह गया—

—हाय मुट्टो क्या कुआँरी ही मरेगी ?

बाजू वाले कमरे से नही, आँगन मे बाथरूम से बाजी की आहट मिली। वहाँ के पत्थर पर बेपरवाही से रखा गया लोटा झनझना रहा था । यूनुस भाईजान के कमरे मे वैसी ही खामोशी थी—शायद अभी नही जागे। कदमो की आवाज और किवाड के सरकने के स्वर के साथ बाजी कमरे मे लौटी और बिना किसी ओर देखे थकी-थकायी और निढाल-सी अपने बिस्तर पर लेट गयी ।

एक बार सबीहा का मन हुआ कि पुकारकर वह बाजी की तबीयत को पूछ ले लेकिन शब्द होठो तक आ-आकर ठिठक गए और अंत मे हारते हुए दम साधकर उसने आँखे बन्द कर ली ।

बाजी को क्या हो गया है ? मन मे ढेर-सा धुँआ सकेले वह चुपचाप क्या सोचती रहती है ? तबीयत अच्छी रहने पर भी अब बाजी नही

मुस्कुराती। एक अजीब-सी कुंठा में घुट-घुटकर रूखी और चिड़चिड़ी हो गई है। ब्याह के पहिले वाली बाजी धीरे-धीरे करके आज सबीहा से कितनी दूर सरक गयी। उसे आश्चर्य होता है कि शादी होने के बाद लोग क्यों बदल जाते हैं।

पहिले जब बाजी का ब्याह नहीं हुआ था और वह सबीहा के साथ इकट्ठे रहती थी तब की बात यूनुस भाईजान के यहाँ आने के बाद नहीं रही। दोनों के संबंधों की सारी उष्णता और माधुर्य कम होता इतना भर बच गया कि सबीहा बाजी की छोटी बहिन है और कुछ नहीं।

अभी मुश्किल से एक साल ही बीता होगा कि एक दिन वह रस्मी बंधन भी कहीं भीतर से टूट गया। सबीहा को बाजी और यूनुस भाईजान के सहारे बेसहारा करके उसके अब्बा ने एकरात चुपचाप आँखें मूँद लीं और कुछ ही महीनों में सबीहा यूँ हो गई जैसे दोनों में रक्त का संबंध न होकर मात्र परिचय ही हो और उस पर दया करके बाजी ने अपने घर में रहने को जगह भर दे दी हो।

धीरे-धीरे करके जाने दोनों के बीच कौन-सा तनाव आकर बैठ गया कि आपस में संक्षिप्त और कारोबारी किस्म की बातों के अलावा और किसी चीज के लिए जगह ही नहीं रही। अवकाश के क्षणों में दोनों ने अपने-अपने कमरों में चुपचाप लेटे हुए कितने घंटे के घंटे व्यर्थ गुजार दिए हैं, इसका लेखा-जोखा रखकर वह क्या करेगी? शायद सबीहा और बाजी को बाँधने वाली डोर कमल के नाल-जैसी थी जो टूटने के बावजूद भी अपने सिरों से निकले चंद बारीक और नाजुक रेशों से जुड़ी होती है।

बाजी की उस घुटन को सबीहा न समझती हो, ऐसी बात नहीं लेकिन समझ लेने भर से क्या होता? पहिले-पहिल बड़ी बहिन के दूल्हे के नाते सबीहा यूनुस भाई को अक्सर छेड़ती और हँस-हँसकर खूब मजाक करती। यूनुस भाई भी उसके साथ गाहे-ब-गाहे खुलकर हँसते लेकिन बाजी को वह सब अच्छा नहीं लगा।

रात के खाने के बाद एक सिगरेट सुलगाकर यूनुस भाई रेडियो के पास

वाले ईजी-चेयर पर धुएँ और सगीत से घिरे-घिराये चुपचाप पडे रहते है। इस वक्त अक्सर बाजी किचन मे या तो खाने मे लगी होती अथवा मूँदने-ढँकने मे व्यस्त होती है। रोज के नियम के अनुसार सबीहा तब पानदान के सामने बैठ यूनुस भाई के लिए पान लगाने मे लग जाती है।

उस रात शाम को बूँदा-बाँदी भी हो गई थी शायद इसलिए उमस थी। पीछे का आँगन बहुत बडा है और आहाते की दीवार पर मधुमालती की बेल छा गयी है। उसी के पास यूनुस भाई ने रातरानी का पौधा लगाया है जो अब फूलने लगा है। गर्मी की रातो मे जब रातरानी की हर टहनी खिलकर महकती है तो एक बेखुद-से नशे मे मन की कई पर्तें उघड-उघड जाती है। बरामदे की रोशनी आँगन के उस हिस्से तक नही जा पाती। यूनुस भाई उसी अँधेरी और महकीली जगह खाट डाले और चुप-चाप लेटे हुए मधुमालती और रातरानी की साँस पी रहे थे कि रेडियो वाले कमरे से ढूँढती हुई सबीहा पान लिए पहुँची। यूनुस की उँगलियो की सिगरेट आधी जल गयी थी। गुल तक झाडे बिना यूनुस भाई आँखे बन्द किए लेटे थे। आहट सुनकर उन्होने चौककर आँखे खोली और बडे दर्द भरे लहजे मे पुकारा—सबीहा। सबीहा चुपचाप पान रखकर जाने लगी कि यूनुस ने उसकी ओढनी के छोर तक हाथ बढाकर कहा—सुनो।

जाने क्यो सबीहा को लग रहा था कि रुकना ठीक न होगा, हँसकर बोली—भाईजान, क्या बहुत उदास हो ?

जवाब मे यूनुस ने दुपट्टे के साथ-साथ कलाई पकडी और खीचकर कहा—

—मेरे पास बैठो सबीहा।

बरबस बिठाए जाने के कारण सबीहा अभी सम्हल भी न पायी थी। दुपट्टा एक ओर के काँधे से गिरकर जमीन पर आ गया था। वह छोर उठाकर काँधे से लेते हुए सिर भी न ढँक पायी थी कि अचानक देखा बाजी आँगन तक आती-आती क्षणभर के लिए रुकी, दोनो को देखा और वापस लौट गयी।

उसी क्षण सबीहा भी वहाँ से लौट आयी लेकिन बाजी ने उसके बाद कई दिनो तक उससे बात ही न की। आहिस्ते-आहिस्ते उस रात की घटना आई-गई हो गयी। न तो बाजी ने कुछ पूछा और न ही सबीहा का साहस हुआ कि कोई सफाई दे सके हालाँकि वह एक क्षण के लिए भी यह भूल नही पायी कि बाजी उसे ओछी समझकर भीतर-ही-भीतर बेहद नफरत करती है।

अक्सर मुहल्ले-पडोस वालो, रिश्तेदारो या मिलने-जुलने वालो से प्राय सबीहा के व्यवहार, काम-काज, स्वभाव और चाल-चलन आदि की ढेर-सी शिकायते बाजी करती—

—ऐ, सच कहती हूँ फूफी लौडिया के रग-ढग कुछ अच्छे नही दिखते। किसी दिन खान्दान के मुँह पर कालिख न पोत जाए तो कहना। अरे, बहन ही हुई तो क्या हुआ ?

फूफी, खाला, चाची या आपा तब दिली अफसोस ज़ाहिर करती, नये जमाने को कोसती और अपने जमाने के साथ अपनी जवानी, काम-काज और सलीकामन्दी की चर्चा के बाद आहिस्ते से कहती—एक बात है बहू—खुदा ने दुनियाँ मे कीडे-पतिंगे की भी जोडी बना भेजी है। इसे कही दे-ले क्यो नही देती ?

ऐसे अवसर पर बाजी के चेहरे का रग उड जाता, अचानक बात तोडकर बाजी उठ जाती—यह जाने, शायद इन्हे अपनी छाती पर पीपल नही दिखाई देता।

पडोस के ताहिर अली सा० शायद उठ गए है, लगातार उनकी खाँसी को आवाज आ रही है। मुहल्ले वाले ताहिर सा० को पसन्द नही करते और औरते खासतौर पर उगलियाँ चटका-चटका कर गालियाँ देती है। ताहिर अली सा० अपनी पचास से अधिक की उम्र, सफ़ेद बर्फ-सी दाढी और दिन रात के रोजे-नमाज के बावजूद भी मुहल्लेवालो का विश्वास नही जीत पाए। लोगो का काम शायद इधर-उधर और बेबुनियाद की बाते बकना ही होता है। आदमी लाख गिर जाय लेकिन भला बाप-बेटी के

रिश्ते मे कोई खोट हो सकता है ? इस बात पर कौन विश्वास करेगा ताहिर अली ने जानबूझकर अपनी बेटी को ब्याह मे नहीं दे, रोक रखा है ?

यूनुस भाई के कमरे से एकाएक खाट छोडकर उठ खडे होने की और फिर दरवाजे का पल्ला सरकार निकलने की आवाज मिली । जल्दी-जल्दी मे पाँवो मे चप्पले डालते और लगभग घसीटते हुए यूनुस भाई अपने कमरे से निकले और आँगन की ओर बढ गए ।

सबीहा हडबडाकर उठी और किचन मे घुस गयी ।

सेहरी के बाद और नीयत बाँधने से पहिले एक सिगरेट सुलगाए यूनुस भाई आँगन मे टहलते है और उस समय तक टहलते रहते है जब तक कि सुबह की आँख न खुल जाय और पूरबी क्षितिज मे रग-बिरगे बादलों मे ढँकी-ढँकाई किरनो की धुन्धली परछाइयाँ रातरानी के बासी फूल, मोगरे की नई कलियाँ और मधुमालती के ताजा पखुरियो की महक के साथ-साथ उजागर न कर दे ।

किचन से निकलकर सबीहा कमरे मे आयी । बाजी की आँख लग गई थी । उनकी मसहरी का पल्ला जरा-सा खुल गया था—शायद मच्छर घुस रहे हो । कोई भी मौसम हो बाजी बिना मसहरी के सो नही पाती और एक भी मच्छर मसहरी के भीतर आ जाय तो उन्हे नीद नही आती ।

कई दिनो के घटे हुए चाँद की मद्धिम रोशनी पास के जगले के सूराखो से टूटकर बाजी के सोए हुए शरीर पड रही थी। चाँदनी के नन्हे-नन्हे टुकडो की सजावट मे लिपटा बाजी का जिस्म उस समय बहुत अच्छा लग रहा था । हालाँकि बाजी का चेहरा नहीं दिख रहा था लेकिन सबीहा चोरो की तरह सुन्न हाथ-पाँव लिए बडी देर तक खडी देखती रही फिर बाहर निकल आयी ।

निहायत फीकी-सी चाँदनी, गुलाब की अनफूली और बाँझ टहनियो, मधुमालती की सुहागिन बेल, मोगरे के महकते हुए चेहरो और रातरानी

की खुशबू-भूलती नन्ही डगालियो पर मुर्दा हो गयी थी। सुबह होगी तो उन झरे हुए फूलो को कचरे के साथ समेट कर स्वय सबीहा फेक आएगी। उतरती और बिखरती हुई रात कभी-कभी कितनी परेशानहाल और उदास हो जाती है !

बस, एक छाया-सी होकर सबीहा चुपचाप ठडे और आहिस्ता कदमो से यूनुस भाई के पास—बहुत पास जाकर खडी हो गयी। कई पल खडी रही। यूनुस ने पलटकर एकबार सबीहा को देखा फिर दूसरी तरफ देखते हुए चुपचाप यूँ सिगरेट फूँकने लगा जैसे सबीहा के आने की बात वह जानता रहा हो।

सबीहा बोली—बाजी सो गयी है।

उधर ही आँखे गडाए यूनुस ने ऐसे हाँ कहा जिसका मतलब केवल सुनने की स्वीकृति भर होती है।

कुछ क्षणो बाद जरा चुप रह कर सबीहा अनायास बोली—एक बात पूछती हूँ भाईजान क्या यह सच है कि बेत की डालियाँ होती हैं, पत्ते होते है पर फूल नही होते ?

जरा आश्चर्य से सबीहा की ओर देखकर यूनुस बोले—मैने बेत का जगल नही देखा सबीहा।

बिना एक पल रुके हुए सबीहा ने कहा—बाजी कहती है कि मै तुम लोगो की छाती पर पीपल हूँ। शायद किसी दिन खान्दान की नाक भी कटा दूगी। अगर यह सच है तो मुझे उखाडकर क्यो नही फेक देते ?

यूनुस शायद आज किसी बात का जवाब नही देगा। बस, बाते सुनता है, मुँह ताकता है और अँधेरे मे देखने लगता है।

सबीहा की आवाज एकाएक रुँध गयी, बडी कठिनाई से बोली—

—मुझसे ऐसी जिन्दगी नही जिई जाती भाईजान—मुझे मार डालो। जिस दिन से मै यहाँ आयी हूँ बाजी के मन मे आग है। वह सीधे मुँह बात नही करती। लोगो से अपने बारे मे इतना सुन चुकी हूँ कि अब अविश्वास करते भी नही बनता। महफिल-मजलिस मे ताने-तिश्ने सुनने के बाद अब

कही आने-जाने की भी हिम्मत नही कर पाती। ऐसे मे किसी दिन क्या पागल नही हो जाऊँगी ?

बात काटकर अधीर-से स्वर मे यूनुस ने पूछा—लोग क्या कहते है ?

सबीहा बोली—वही कहने आयी हूँ। सुनकर मुझसे सच बात तो कहोगे न ?

यूनुस आशकित और भयभीत आँखो से सबीहा की ओर देखने लगा।

अचानक पहिली और धुँधली सुबह की सर्द हवा मधुमालती की बेल से होकर सरक आयी और उसके साथ ही मुहल्ले की मसजिद से अजान की सदा उठने लगी।

—क्या यह झूठ है कि मेरे रिश्ते की बीसियो बाते आयी और तुमने उनमे कोई-न-कोई खोट निकालकर सबको टाल दिया ?

यूनुस ने जवाब नही दिया।

—लोग कहते है कि तुम जानबूझकर मेरी शादी नही करना चाहते क्योकि तुम खुद मुझे चाहते हो, मुझसे दिलचस्पी रखते हो लोग तो यहाँ तक कहते है कि मै तुम्हारे बच्चे की माँ तक बन चुकी हूँ

सबीहा ने दोनो हाथो से अपना मुँह ढँक लिया और रोने लगी।

यूनुस से कुछ बोला नही गया बस पत्थर बना जहाँ का तहाँ खडा रह गया। गली मे खडे तार के खभे मे हवा की वजह से शायद कोई चीज टकरा रही है ठन . ठन

अपने स्वर को बहुत कडुवा करके सहसा सबीहा फिर बोली—

—बाजी समझती है कि मै यही घुट जाऊँगी। तुम सोचते होगे कि मै जा ही कहाँ सकती हूँ, है न ? अच्छा, मै क्या मुट्टो से भी गई-बीती हो गई हूँ ?

परिहास के स्वर मे यूनुस ने कहा—देखता हूँ, किसी के साथ भाग जाने का तय करके आयी हो।

—हाँ।

—किसके साथ ?

—क्यो, तुम क्या मेरे साथ भागकर नही चलोगे ? देखो तो, जो बात

कई महीनो की कोशिश के बाद भी तुम नही कह पाए, वह मैंने एक पल मे कह दिया है—। सबीहा बडे अजीब स्वर मे हँसी—गुनाह सवाब की बात जाने दो और बाजो सो रही है। कहकर सबीहा ने सिर का आँचल हटाया, दुपट्टा खीचकर सीने से अलग किया और एक ओर फेंककर दो कदम यूनुस के पास और बढ आयी।

सबीहा को इतने पास से इस तरह यूनुस ने कभी नहीं देखा था। धुँधलके मे भी सबीहा का चेहरा क्या दप-दप नही कर रहा था? कुछ क्षण हतप्रभ-सा यूनुस ताकता रहा फिर एकाएक पूरी शक्ति के साथ जरा परे हटकर एक जोर का तमाचा उसने सबीहा के गाल पर लगा दिया और हाँफते हुए अवरुद्ध कंठ से बोला—

—छी सबीहा, तुम इतना गिर जाओगी, यह मै नही जानता था।

सबीहा अपनी जगह से हटी नही, जैसे कुछ भी न हुआ हो ऐसे बिल्कुल निर्विकार आँखो से यूनुस को ताकती रही।

यूनुस वहाँ से सरका, एक ओर गिरा हुआ दुपट्टा उसने उठाकर आहिस्ते से सबीहा के कंधो पर डाल दिया, थोडी देर चुपचाप उसे देखता रहा फिर तेजी से बाहर निकल आया।

तीन पेड़ और दो छाँव

आलू बेचने वालो की कतार इमली के पास-पास लगे तीन दरख्तो की गहरी छाँव से शुरू होकर मनिहारी और किराने की दूकान वाले शेड तक चली गयी है। बारिश के समय उनमे से कोई वहाँ रह नही पाता। अकस्मात पानी गिर जाय तो सब अपनी-अपनी आलू की दूकान पर (दूकान के नाम पर छोटे-बडे साइज के अनुसार छँटे हुए आलुओ के दो या तीन ढेर होते थे) बैठने-बिछाने की टाट डालकर प्राय सब शेड मे चले जाते थे।

लेकिन बदरू कभी किसी शेड मे बरसात से बचने के लिए नही गया। बारिश के मौसम मे जब बहुत से लोग अपनी दूकान लेकर किसी किराने या मनिहारी वाले से जरा-सी जगह के लिए मिन्नतें और खुशामद करने में लगे होते, बदरू अपनी दूकान बस जरा-सा हटाकर इमली के तने के पास कर लेता।

तीनो दरख्त यूँ भी घने है और चारो ओर भले डबरे भर जायँ पेड़ के तनों के पास की दो-अढाई गज़ जमीन सूखी पडी रहती है।

बौछार जब तेज हो जाती है और हवा से बूदे उल्टी-सीधी पडने लगती है तो भी बदरू वहाँ से नही हटता। दूकान पर टाट डालकर अपने कपडे सकेल, वही उकडू बैठ जाता है और दोनों हाथो मे छाता थामे हुए चारो तरफ के डबरो के गँदले पानी की सतह पर पडने वाली बूँदो के बडे-बडे बुलबुलो का क्षण-क्षण मे टूटना-बनना देखता रहता है।

पिछले दो घटो से बारिश हो रही थी—थमते-थमते तक धूप निकल आयी और जलालुद्दीन, मोहन, शरीफ और रामचरण की माँ सब किराने वाले के शेड से अपनी-अपनी दूकानो पर आ गए।

जलालुद्दीन की दाढी खिचडी हो चुकी थी। अलीगढी पायजामा, लखनवी कुरता, दुपल्ली हल्की-फुल्की टोपी और आँखो मे हमेशा सुरमा। सजीदा से सजीदा बात मे भी वह मजाक के पहलू निकाल लेता है, उसकी होशियारी और बेबाकी का जवाब नही और लोग उसकी सोहबत को तरसते है।

आलू के ढेरो पर ढँके हुए टाट पर इमली की पत्तियाँ टूट-टूटकर जमा हो गयी थी। उन्हे झटकता-झटकता जलालुद्दीन हँसने लगा फिर एक बार इमली की फुनगियो पर चमकती धूप को देखकर रामचरण की माँ को सुनाते हुए उसने कहा—बूँदे पड रही है और धूप भी निकल आयी है। साले, सियारो का ब्याह हो रहा है!

रामचरण की मा सुन नही पायी। बदरू जहाँ बैठता था उधर देख रही थी। बदरू नही आया था। वह होता तो इमली के तनोवाली उतनी जगह को बरबस सूखी बनाए रखता। बारिश मे सब लोगो के शेड मे चले जाने पर भी बदरू के वहाँ बैठे रहने को सब लोग भले बदरू की मूर्खता समझकर हसते हो, रामचरण की माँ ने कभी उस हँसी मे साथ नही दिया।

बदरू गलत नही कहता। शेड के नीचे पक्के फर्श पर दूकान लगाने के लिए जब वह म्युनिसिपैल्टी का किराया नही भर सकता तो अपनी रोज की रोजी देने वाली जमीन को छोडने का उसे क्या अधिकार है? घटे भर

या कल तो आखिर उसी छाँव मे जगह और उसी जगह ठौर मिलेगी न ? खपरैल वाली छाँव पौर इमली के पेडो वाली छाँव के अन्तर को बदरू ही समझता है, रामचरण की माँ तो कोशिश करके भी नही समझ पाती । समझ लेने ही से क्या होगा ?

मोहन गीले टाट निचोडने लगा ।

शरीफ ने कहा—बदरू आज फिर नही आया । जलाल भाई, हम एक दिन दूकान न खोले तो चूल्हा जलना मुश्किल हो जाय !

जलालुद्दीन के तराजू की साँकल उलझ गयी थी, उसे ठीक करते-करते वह फिर हँसा—क्यो रे शरीफ, तुझमे और बदरू मे क्या कोई फर्क नही ? तूने रियासत की नौकरी कब की है ?

उस बात पर रामचरण की माँ को छोडकर सब हँस पडे ।

बदरू ने किसी रियासत मे बीस बरस नौकरी की और वहाँ से लम्बी रकम और कीमती सामान लेकर भाग आया है, इस बात का हल्ला पहिले शरीफ ने ही मचाया था । धीरे-धीरे वह बात खूब फैली कि बदरू के पास काफी पैसा है लेकिन खाए न खाने दे—केवल लोगो को दिखाने के लिए ही आलू की दूकान लेकर बैठा है वर्ना बाजार भाव को गिराकर हमेशा सस्ती कीमत पर धधा करने और ग्राहको के साथ ईमानदारी का ढोल पीटने का दम आज के जमाने मे और किसका हो सकता है । जो सड़ी-सी आलुओ की दूकान का मोहताज हो वह दो-दो तीन-तीन दिन बाजार आए बिना खाएगा क्या ?

जब तक बदरू की बेटी अमीना का ब्याह नही हुआ था, रामचरण की माँ भी यह समझती रही कि बेटी का ब्याह करना पहाड होता है—शायद रियासत से लायी दौलत बदरू ने अमीना के लिए रख छोडी हो ।

लेकिन शादी जैसे रूखे-फीके ढग से हुई, उससे रामचरण की माँ भी निराश हो गयी । एक तो लडका निहायत मामूली खान्दान का, कम पढा-लिखा और काले चेहरे वाला था और दूसरे दूल्हेवालों की तरफ से चढाव मे कोई खास जेवर भी नही आये । पावो के लिए निहायत ही बारीक-

बारीक बीस अच्छे और कानो के लिए मुश्किल से छ माशे के टाप्स और बस। अमीना नगी कलाई और खाली गला लिए ही ससुराल गयी।

शादी से पहिले एक दिन रामचरण की माँ ने बात-बात मे बदरू से कह दिया था कि वह अपनी अमीना को शरीफ के पल्लू से क्यो नहीं बाँध देता ? लडका रोजी-रोटी से लगा है, दिखने-दिखाने मे बुरा नही और अभी भले बदरू की इज्जत न करते हुए उसके सामने बीडी पिये, ब्याह के बाद बदरू को वह सर-आँखो पर बिठा लेगा।

बदरू ने रामचरण की माँ को ऐसे घूरा कि वह एकबारगी ही सहम गयी। बडे ही दुखकर उसने कहा था—रामचरण की माँ, मै क्या इतना गिर गया हूँ कि अपनी बेटी का ब्याह एक फकीरे से करूँ ?

यह माना कि बदरू ने रियासतो जमाने मे अच्छे ओहदे की नौकरी की थी। यह भी मान लिया कि शरीफ की माँ खैरात माँगती थी लेकिन अब तो वह मर भी गयी और शरीफ साथ इज्जत के दूकान करने लगा है। बदरू का वह ओहदा और उसकी शान तो रियासत के साथ गयी। अब तो वह भी शरीफ की तरह एक आलू वाला है और फिर कौन इस बात को दावे के साथ कह सकता है कि दो-तीन पुश्त पहिले उसके ख़ानदान मे कौन क्या था ?

खानदान के बडप्पन का अगर इतना ही रोब-दाब था तो एक मामूली लौंडे से अमीना को क्यो ब्याह दिया आखिर उसमे कौन सुरखाब के पर लगे है ?

शादी के बाद जिस दिन वलीमा का खाना था, रामचरण की माँ नहीं गयी। बिदाई की रात जुलवे मे शामिल होकर जो कुछ अमीना को देना था, दे आयी थी। खासतौर पर शरीफ के यहाँ जाकर उसने उसे बताया कि अमीना जहाँ ब्याह होकर जा रही है उसका बाप तो कुजडा था—खान्दानी कुजडा।

शरीफ ने वलीमे की दावत नही ली, चुपचाप पडा था। रामचरण की माँ की बात सुनकर बोला—रामचरण की माँ, कुँजड़ा है तो क्या

हुआ मुफ्त फकीरे से तो अच्छा होगा !

मगर हुआ यह कि सात महीने बाद ही अमीना वापस मायके आ गयी। एक दिन धीरे से बात खुली कि उसका शौहर निहायत ही ओछे ख्याल का शक्की आदमी है। परदे की पाबदी के नाम पर अमीना को कैद करके रखता है, आँगन तक की हवा लगने नही देता और बाहर जाने पर ताला लगाकर निकलता है। कुछ दिनो बाद इस बात के साथ एक और बात जुड गयी कि उसके शौहर ने कोई और औरत अपने घर ला बिठायी और अमीना को अपने घर से हमेशा के लिए निकाल दिया है।

सिवाय जलालुद्दीन के और किसी मे साहस नही था कि इस बात पर बदरू के सामने अफसोस जाहिर करे। लेकिन उसे भी ऐसा जवाब मिला कि सब देखते रह गए। जैसे ही जलालुद्दीन ने बात खत्म की, बदरू ने तपाक से खूब कडुवे ढग से कहा—जलाल भाई, अमीना मेरी बेटी है उसके लिए मुझे खुशी या गम होने की बात समझ मे आती है। तुम लोग क्यो अफसोस करते हो ? क्या इसलिए कि हम लोग साथ बैठकर आलू बेचते है ?

जाने क्यो रामचरण की माँ को दुख होने के बदले खुशी हुई और लगा कि बदरू ने वही बात कही जो वह कहना चाहती थी तो भी उससे जलालुद्दीन की स्थिति देखी न गयी, उसे सम्हालने के लिए उसने कहा—

—तुम्हे इतने बरसो से जानते है बदरू। दुख-सुख मे हम लोग शामिल न होगे तो और कौन होगा ?

बदरू ने रामचरण की माँ से कभी कडी बात नही की, इस बार भी चुप हो गया।

थोडे ही दिनो में रामचरण की माँ ने सबको जान लिया था—शरीफ़, मोहन, जलालुद्दीन—सबको। मोहन बातचीत से ही उचक्का लगता है। शरीफ पहिले जैसी बातें अब नही करता और कमबख्त जलालुद्दीन की दाढी मे तिनका है ! . .

बारिश थम जाने के बाद जलालुद्दीन की दूकान सबसे पहिले फिर जम गयी

थी। मोहन चाय पीने गया था और शरीफ सडे हुए आलुओ को छाँट-छाँटकर फेक रहा था। रामचरण की माँ अपनी दूकान की तरफ बढी जो अभी भी ढँकी-मुँदी उसके ग्राहको-को फेर रही थी और जलालुद्दीन की ओर मिनट-मिनट मे तराजू खनक रहे थे।

ऊपर का गीला टाट उठाकर उसे निचोडते हुए रामचरण की माँ ने जलालुद्दीन की ओर देखा। बदरू की गैरहाजिरी मे इतने दिनो के बाद फिर से रियासत वाली बात निकालकर उसकी हँसो उड़ाना रामचरण की माँ को अच्छा नही लगा। हालाँकि बात कहे कोई दस मिनट हो गए थे लेकिन उसी बात को जोडते हुए रामचरण की माँ ने कहा—जलाल भाई, तुम्हारी कोई ओलाद नही है न, इसलिए तुम इन बातो को नही समझोगे?

—कौन बात रामचरण की माँ?

—यही, बदरू के आने न आने की। अमीना मर रही है। उसे देखने जाना या बदरू से हमदर्दी जतलाना तो दूर रहा उल्टे उसकी बुराई मे लगे हो।

सुनकर जलालुद्दीन के सिवाय सब सकते मे आ गये। शरीफ टाट निचोडकर धूप मे सूखने के लिए डाल चुका था। एक दूसरी बोरी ले छोटे आलुओं का ढेर समेट रहा था, उसने पहिले जलालुद्दीन की ओर फिर रामचरण की माँ को ओर अचानक देखा।

किसी ने कुछ नही कहा तो भी जैसे अपने आप से कह रही हो, ऐसे रामचरण की मा बोली—दो महीने हो गए, बिचारी बिस्तर से बँधी है। जाने आजकल के जवान-लड़के-लडकियो को क्या हो गया है।

थोडी ही देर मे धूप भी नही रह गयी और अधेरा अपने गीध-जैसे डैने पसारे इमली के पेडो से नीचे छाँव मे उतरने लगा। बाजार की भीड़ भी काफी छँट गयी थी। अब सिर्फ इक्के-दुक्के लोग और दूकानदार ही रह गये थे।

तराजू के पल्लो, डडी और बाटो की आपस की टकराहट और झन-झनाहट मे आलूवालो की दूकाने सिमटने लगी।

अगले दिन बाजार मे सबसे पहिले बदरू की दूकान आयी। उसके बाद शरीफ आया, फिर मोहन और फिर जलालुद्दीन। रामचरण की माँ सबसे देर मे आयी। अभी आलुओ के बोरे रखे भी नही थे कि बदरू पर निगाह पडी। उन्ही तेज कदमो से पास जाकर रामचरण की माँ ने कहा—बदरू, तुम आए हो। अमीना अब कैसी है?

बदरू एक पाँव मोडे और दाहिने घुटने पर धरी हुई हथेली पर ठोढी टिकाए एक ओर चुपचाप देख रहा था। आवाज से चौककर उसने रामचरण की माँ की ओर देखा—आँसू छलछला रहे थे। बडी फुर्ती से पलकें झपकाकर कई बार बदरू ने आँसू निगलने की कोशिश की लेकिन वह हुआ नही बोलने की कोशिश की, वह भी नही हुआ। खखारकर उसगे गला साफ क्रिया और बोला—अमीना मर जाएगी रामचरण की माँ, वह बच नही सकती सिर से पाँव तक फूल गयी है।

सुनकर रामचरण की माँ बस बदरू को देखती रह गयी। थोडी देर तक वही खडी रही, फिर बैठकर इधर-उधर आँखे अटकाती रही और फिर सरककर अपनी दूकान पर आ गयी।

कुछ लोगो के साथ ऐसा क्यो होता है कि दुख घेरकर ही बैठ जाता है—चारो ओर से घेरकर? कही छूटने-टूटने का अवसर नही देता। रामचरण की माँ मगर किसके लिए दुख करती है? अमीना के लिए या बदरू के लिए?

रियासती जमाने मे बदरू सब्जी खरीदने तक बाजार नहीं गया, अब वही बोरी बिछाकर आलू बेचता है। उसके छ बच्चो में एक अमीना ही बच रही थी, बाकी सब दस से अठारह की उम्र तक आ-आकर मर गए। एक के बाद एक। अब पाँच बच्चो को दफन करके बदरू कितना सब्र रखेगा? अमीना की याद आते ही फफकने लगता है।

शरीफ की दूकान मे कोई ग्राहक खडा था लेकिन शरीफ नही था। दूकान पास-पडोस वालो के जिम्मे छोड़ निहायत बेपरवाही से वह हमेशा इधर-उधर घूमता रहता है।

एकाएक रामचरण की माँ बोली—बदरू, अगर मुझ पर यकीन हो तो दूकान यही रहने दो और घर जाकर अमीना के पास बैठो। जो भी बिक्री तुम्हारी किस्मत की होगी, उसके साथ बोरे घर पहुँच जाया करेंगे।

दूसरे दिन हालाँकि बदरू नही आया लेकिन उसकी दूकान रामचरण की माँ के पास ही लगी।

दो दिन और गुजरे। तीसरे दिन इतवार था। तीन के बदले आलुओ के पाच ढेर लेकर रामचरण की मा बैठी। इतवार के दिन चूंकि बडा बाजार भरता है और बडी भीड इकट्ठी होती है, लोग बडी सुबह आकर अपनी-अपनी जगह घेर लेते है।

रामचरण की माँ ने साढे नौ तक बदरू के लिए जगह रोक रखी थी लेकिन उसकी दूकान नही आयी और एक चूडीवाले के झगडे से ऊबकर उसने जगह छोड दी।

लगभग दस बजे बदरू की दूकान लेकर आनेवाला नौकर आया लेकिन उसके हाथ खाली थे। बिना किसी घुमाव-फिराव के उसने एक जुमले मे बताया कि सुबह अस्पताल ले जाते हुए रास्ते मे अमीना रिक्शे पर ही मर गयी।

रामचरण की माँ ने फटी-फटी आँखे और खुला मुँह लिए जलालुद्दीन, मोहन और शरीफ की ओर देखा। हलक सूख गया था लेकिन बार-बार कुछ भीतर निगले जा रही थी। किसी ने कोई असर नही लिया। या तो वह खबर पुरानी थी या अमीना का मर जाना उन लोगो के लिए कोई नयी बात न थी। सब अपने-अपने काम मे चुपचाप लगे रहे।

बिना किसी से कुछ कहे रामचरण की मा उठी और नौकर के पीछे पीछे चुपचाप हो ली।

जलालुद्दीन बेपरवाही से कह रहा था—अमीना को उसके शौहर के निकाले हुए कितना अरसा हुआ ?

—डेढ बरस हो गए।—मोहन ने कहा।

—डेढ बरस से अमीना मायके मे ही रही न ?

—हा, फिर वह ले ही कहाँ गया ? क्यो ?

—पिछली रात एक बच्चे को जनम देकर अमीना मरी है।—फिर जरा रुककर नाटकीय ढग से हँसते हुए जलालुद्दीन ने कहा—देखते हो, कितना बुरा जमाना आ गया है !

रामचरण की मा ने जाते-जाते सब सुना लेकिन लौटकर पीछे देखने का साहस नही हुआ। घन्टे भर बाद जब वह पेटी से पैसे लेने आयी तो मोहन के सिवा और कोई नही था।

सियम (तीजा) के दूसरे दिन बदरू ने दोपहर के बाद दूकान खोली। सभी थे लेकिन सलाम-दुआ के अलावा किसी से कोई बात नही हुई। रामचरण की माँ तक चुपचाप बैठी हुई एक ढेर से छोटे आलू चुन-चुनकर दूसरे ढेर मे डाले जा रही थी।

एक पाँव मोडे और दूसरे घुटने मे धरी हथेली पर ठोढी टिकाए बदरू बडी देर तक किराने वाले की शेड की ओर देखता रहा फिर एकाएक छल-छलाकर बोला—जलाल भाई, अमीना भी मेरा साथ छोड गयी, यह तुमने सुना न ? मै जानता हूँ, तुम लोगों को मेरे मुँह पर कालिख ही दिखती होगी, उसका तमाचा नही। अमीना समझती होगी कि मै मर जाऊँगा। मेरी बेटी होकर भी वह नही जान पायी कि मेरी रूह बडी बेगैरत है—ऐसे नही निकलेगी।

बदरू रोने लगा।

आकाश सुबह से मुँह उतारे था। दोपहर ही से पश्चिम की ओर घटाएँ काली और गहरी पड़ने लगी थी और थोडी-थोडी देर मे धूप-छाँव हो जाती थी।

बदरू की बात के जवाब में जलालुद्दीन कुछ बोले कि अचानक बूँद पडने लगी और सम्हलने का अवसर दिए बिना ही बारिश तेज़ हो गयी।

बाजार भर मे भाग-दौड मच गयी। जलालुद्दीन, शरीफ और मोहन सबने छाँव ढूंढ ली केवल रामचरण की माँ ही बचते-बचते भीग गयी।

अपनी दूकान इमली के तनो की ओर सरकाना छोड़कर बदरू ने भी

फुर्ती से उस पर टाट डाल दिया और शेड की ओर बढ रही रामचरण की माँ को आवाज देकर उसने कहा—ठहरो रामचरण की माँ, मै भी शेड मे आता हूँ।



मरे हुए चेहरे

दुपहरी जब एकदम आग हकोर ही लकलकाने लगे तो किसी ठण्डे साये मे बैठकर आस-पास के पेडो की घनी छॉव को चुपचाप देखते रहने से बढ कर और क्या सुख हो सकता है ? थकावट न भी हो तो अजब-सी तन्द्रा घेर लेती है, फिर जुम्मन तो सुबह छ बजे से खट रहा था !

सामने के बरसो पुराने बड की पत्तियाँ बहुत आहिस्ते-आहिस्ते सरगोशियाँ कर रही थीं और नीचे धूल की छोटी-मोटी मौज के साथ जमीन मे सूख कर बिछे कत्थई रङ्ग के मुडे-तुडे पत्ते एक ओर लुढक रहे थे खड . .... खड ख

जुम्मन ने शलूका उतार कर एक ओर रख दिया और थोडा तनकर उस अजलि-भर ठडक को अपनी पसीनाभरी नगी छाती पर झेलने लगा ।

कब्र के पास जुटी भीड से निकल कर दो-तीन लोग थोडी दूर पर रखे गगरे तक बढ रहे थे। उनमे से एक ने मिट्टी सने हाथो को पीछे ले जाकर कैंची-सी बनाई और जरा आगे

भुककर भाँक देखा—गगरे मे पानी नही के बराबर। मुस्कुराकर उसने हाथ के उल्टे हिस्से से गगरे को टेढा किया और हाथो मे पानी उडेल लिया।

जुम्मन ने अभी इत्मीनान की साँस भी न ली थी कि कब्र मे घिरे करीब-करीब सभी लोग अपने-अपने मिट्टी-सने हाथ लिये पानी के लिए बडे और थोडी ही देर मे चिल्लाहट मच गई कि जुम्मन ने पानी का इन्तजाम ही नही किया। अरे, तकियादार का काम ही ऐसा रहता है। भई, सरासर बदमाशी है! क्या उसे मालूम नही कि जनाजे के कफन-दफन के बाद हाथ धुलने के लिए पानी चाहिए? आदि। उनमे से किसी ने बडी ही रोबीली आवाज मे पुकार लगाई—अरे तकियादार!

यह सब कोई नई बात न थी। पिछले चार बरस की तकियादारी मे अक्सर ही यह होता था। कब्रिस्तान मे बीसियो तरह के लोग आते है। भले घटे-दो घटे के लिए लोग आये लेकिन आने वालो मे (जिसके यहाँ मैयत हो गई हो, उसे छोडकर) करीब-करीब हर आदमी तकियादार को अपना नौकर समभने लगता है। जुम्मन समभा करे कि वह किसी का घरेलू नौकर नही अन्जुमन का मुलाजिम है, अजुमन को चलाने के लिए चदा तो आखिर लोग ही देते है न? अक्सर ऐसी बाते कही-सुनी जाती कि जुम्मन लापरवाह और कामचोर है। कब्रिस्तान की देखभाल ठीक से नही करता। दरवाजा खुला छोड देता है और अहाते मे ढोर चरते रहते है। पुरानी कब्रो की मरम्मत नही करता, धँसती जाती है और सबधित लोगो से पैसे लिये बिना कब्रे नही सुधारता। रात मे कब्रबिलाव आने लगे है और मैदान मे हड्डियाँ बिखरी मिलती है, आदि।

और तो और एक दिन अन्जुमन के प्रेसिडेट तक जुम्मन पर उबल पडे कि उनके जवान भतीजे की लाश चार बजे से पडी रही और गुसल देने का तख्ता उनके यहाँ नौ बजे दिन को पहुँचा। कहने लगे कि जुम्मन के खिलाफ बहुत-सी शिकायते आई है, अगर उसने काम मे ध्यान न दिया तो मजबूरन उन्हे नौकरी से अलग करने की कार्रवाई करनी पडेगी। उस दिन जुम्मन ने कुछ नही कहा, टाल गया कि जाने दो गमजदा है, चिडचिडा गए होंगे।

लेकिन उसके बाद भी कई धमकियाँ इसी तरह की दी गई तो जुम्मन ने जबानी इस्तीफा पेश कर दिया—उससे जितना हो सकता है उतना ही करेगा। पाँच रुपये महीने की तकियादारी और उस पर रोब यह कि हर दूसरे दिन कैरेक्टर-रोल वार्निङ्ग!

मगर जुम्मन ही नही अन्जुमन के सेक्रेटरी, प्रेसिडेंट और दूसरे सभी लोग जानते थे कि तकियादारी के लिए आदमी नही मिलते। अक्सर यह होता कि मना-बुझा कर जबानी इस्तीफा उसी के आगे फाड दिया जाता।

हँसी की बात नही सचमुच उससे अब यह नौकरी नही होगी.

भीड मे से प्रत्येक आदमी अब घूर-घूरकर निहायत बेपरवाही से छाव मे बैठे जुम्मन की ओर देख रहा था। मन मे सभी गालियाँ दे रहे होंगे। आगे झुकते हुए, अपने थके जिस्म का भार हथेलियो के सहारे धरती पर डालकर जुम्मन उठ गया।

—या अल्लाह!

उन लोगो के प्रश्न किये बिना जुम्मन ने सफाई देनी शुरू कर दी कि अकेली जान वह क्या-क्या करे? आस-पास तालाब-कुँआ नही और नल वहाँ से दो फर्लांग पर पडता है, ऐसी सूरत मे क़ब्रिस्तान के दूसरे कामो के साथ पानी उससे नही हो सकता। जुम्मन की बात हमेशा लाजवाब कर देनेवाली होती है। उस पर किसी ने कुछ नही कहा क्योकि इससे पहिले एक बार ऐसी बात उठने पर जुम्मन ने मुँहतोड जवाब दिया था—आप लोग चदे की रक़म थोडी और बढाकर यहाँ अहाते मे कुँआ क्यो नही खुदवा देते?

वैसे ही मिट्टी-सने हाथ लिये किसी तरह रगड-रगड कर सब वापिस क़ब्र के पास लौटने लगे कि बदरुद्दीन तेली ने हँसकर अपनी रगडी हुई हथेलियाँ पीटकर धूल झटकारी और फलसफाना ढग से अपने पास वाले युवक से कहा—अरे मियाँ, यहाँ की मिट्टी धोकर कहाँ अलग करोगे? इसे सीने पर मल लो—यूँ। कहकर अपनी मैली चीकट कमीज पर उसने गदी हथेलियाँ मल ली और हँसता हुआ आगे बढ गया।

भीड से आगे निकल कर जुम्मन ने ताजा कब्र के पास से कुदाली, फावडे और घमेले उठाकर एक तरफ किये, जनाजे के ऊपर की चादर गोल-मोल कर जरा दूर उछाल दी और अगरबत्ती की समूची पूडी जलाकर, मिट्टी मे खोस तेजी से हट गया।

लोगो ने फातिहा पढने के लिए हाथ उठा दिये थे। सबसे पीछे पहुँच कर जुम्मन ने भी हथेलियाँ फैलाई और सबके साथ-साथ मॅह पर हाथ फेर लिया।

पहिले एकाध बरस जुम्मन हर जनाजे की नमाज अदा करता और दफन के बाद दिल से फातिहा पढता था लेकिन धीरे-धीरे वह सब नही रहा। किस-किस के लिए वह फातिहा पढे ? अक्सर अब वह जनाजे की नमाज के दौरान खुद रही कब्र के पास होता और फातिहे के वक्त सामान समेटने, कब्र को गीला करने के लिए पानी उलीचने या अगरबत्ती जलाने मे लग जाता। उसके बाद भी अगर वक्त बच रहता तो आयत पढे बग़ैर हथेलियाँ फैलाता और एक सेकड के लिए रुक मुँह पर फेर लेता।

फातिहे के बाद लौटनेवाले लोगो मे नई उम्र के दो-चार युवको को छोडकर कोई सजीदा नही था। उन लोगो की दबी-दबी हँसी और आपस के ताने-तिश्ने की आवाज जब धीरे-धीरे करके फाटक के बाहर हो गई तो जनाजे के ऊपर वाली चादर बगल मे दबाकर जुम्मन फाटक बद करने आया। बाहर अब भी दो-एक भिखमगे बैठे हुए थे। खेत मे कोई ढोर मर जाय तो आसमान मे जैसे बेशुमार चीलें मडलाने लगती है उसी तरह किसी लाश को कब्रिस्तान के अहाते मे घुसते देखकर माँगने वालो की एक बडी भीड फाटक के पास इकट्ठी हो जाती है। खैरात बँटना खत्म हो जाय तो भी लोग नहीं थमते, उस समय तक आते रहते है जब तक कि फाटक बद न हो जाय।

एक बार लौटकर जुम्मन ने कब्र की ओर देखा—कब्बू ने सारा सामान लगा दिया था और वही के साये मे बैठा अगरबत्ती की फटी हुई पूडी को बार-बार नाक से लगा रहा था।

धूप की चमक से चौधियाती और झिपझिपाती आँखे आधी खुली आधी बंद किए जुम्मन फाटक बन्द करने लगा। साला, फाटक भी बाबा आदम के जमाने का है! पल्लो की लकडियाँ दीमक से चरी हुई तो है ही, सडने भी लगी है। फाटक का एक पल्ला टेढा होकर जमीन मे धस-सा गया है और फाटक खोलने-बद करने के कारण उतनी जगह की जमीन पर छिलकर नाली-सी बन गई है।

दुपहरी के मौन मे पल्ला खीचने और जमीन मे रगडने-घिसटने का स्वर चुभने लगा—खर्र्र्र्र्र् च्यूँ

अन्जुमन को गालियाँ देता हुआ जुम्मन वहाँ से लौटा—कमबख्त फाटक बन्द भी हो तो क्या? दोनो पल्लो के बीच इतनी जगह रह जाती है कि आसानी से बकरियाँ घुस आएँ।

अपने मकान की ओर जुम्मन को बढता देख कब्बू वहाँ से उठकर दौडा-दौडा आने लगा पर बीच ही मे जुम्मन ने टोककर कहा—मेरे पास क्या मिठाई बँट रही है बे? पैसे लाने कब जाएगा? पैसे लाने का अर्थ कब्बू जानता है—जिसके यहाँ मैयत हो गई है उसके घर जाकर दफन का बिल देना

कब्र खुदवाई—पाँच रुपये।

गुसल का तख्ता पहुँचाने की मजदूरी—आठ आने।

कब्र की छवाई—दो रुपये।

कब्बू सहमकर रुका, उल्टे पाँव लौटा फिर जैसे कि इस अवसर पर अक्सर कहा करता था आहिस्ते से बोला—लौटते मे गोश्त ले आऊँ न उस्ताद?

हर लाश के पीछे कब्बू के हिस्से केवल अठन्नी आती थी अतः इस प्रश्न का मतलब इजाजत लेना था कि जुम्मन के हिस्से आए कब्र छवाई के दो रुपयो में से कब्बू गोश्त खरीद लाए।

जुम्मन इस प्रश्न का उत्तर प्रायः मुस्कुराहट या मौन से देता था लेकिन आज जुम्मन ने न तो कब्बू की ओर देखा और न ही अपनी मुस्कु-

राहट से स्वीकृति दी, उन्ही ठडे कदमो से बढ गया। मकान के पिछले ऑगन की दीवार मे कोई बीस-पचीस चारपाइयाँ एक दूसरे पर लदी-फँदी पडी थी। पहिले जब अन्जुमन ने जनाजे के लिए डोला नही बनवाया था तब हर लाश के साथ एक चारपाई भी हिस्से मे आती थी लेकिन अब डोले के साथ केवल एक चटाई भर आती थी। वह चटाई भी कभी-कभी इतनी फटी-चिथी होती कि फेक देना पडता। जुम्मन उन जमा हो गई चारपाइयो का क्या करेगा ? बेचने पर बिकती भी नही। मुर्दा-ढोई चारपाइयो को खरीदकर लोगो को क्या जल्दी मरना है ?

ऑगन मे आम का पेड जितनी छॉव नही देता, उससे अधिक कचरा फैला देता है। आधी उसकी और आधी मकान की छॉव मे चटाई बिछी थी। जैसे टूटकर जुम्मन उस पर पड गया। चित लेटकर महकते-गमकते और झरते हुए बौर की कच्ची सुगन्ध की बौछार से थोडी देर के लिए उसने आँखे बन्द कर ली फिर एकाएक वह चौककर उठा और पास के दडबे को खोल कर देखने लगा—चितकबरी मुर्गी ने अडा दिया क्या ?

अगली सुबह आठ बजे ही कब्बू ने जगा दिया। यह लडका नीद भर सोने नही देता। रात देर गए बकवास करता है और सोने के बाद नीद मे दात कटरता और बडबडाता है। इससे पहिले कि जुम्मन उसे गाली दे, कब्बू ने बिस्तर पर बैठकर जल्दी से कहा—उस्ताद, तुम्हारी चिट्ठी आई है। चिट्ठी आने की बात ऐसी थी जैसे कोई मेहमान आया हो। मुँह की चादर खोल और बाँई कोहनी के सहारे सीने तक का हिस्सा ऊँचा करके जुम्मन ने अविश्वास भरे स्वर मे कहा—कहाँ, देखूँ ?

सचमुच जुम्मन के नाम पत्र आया था ! कई बरस बाद एकाएक किसने उसे याद किया ? कब्बू को कार्ड बढाने तक का भी समय जुम्मन ने नही दिया, लपककर उसके हाथ से कार्ड छुडा, एक बार पता देख मज़मन पढने लगा। लिखा था—

जुम्मन भाई,

आदाब।

बाद आदाए आदाब के वाजे हो कि मै यहाँ पर खैरियत से हूँ और आपकी खैरियत खुदावन्द करीम से शबोरोज नेक चाहती हूँ। दीगर अहवाल यह है कि मेरी बदनसीबी की बात आपको मालूम हो ही गई होगी। अब मेरा आपके सिवा—अपना कहूँ या बेगाना—और कौन है? खुदा मुझे गारत ही कर दे। अकेली और जवान-जहान जान को लेकर कहाँ जाऊँ? तुम मुझे भले बेहया कह लो, लेकिन अब अकेली न रह सकने के कारन ही अपने बारे मे बात करने मै तुम्हारे पास आ रही हूँ!

—अनवरी बेगम।

कब्बू एकटक जुम्मन की ओर देख रहा था। उसको उम्मीद थी कि खत पढने के बाद जुम्मन जरूर सुना देगा कि किसका खत है और क्या लिखा है। बिना कुछ कहे उसे बार-बार खत पढते देख कब्बू से नही रहा गया, कार्ड पर अपना हाथ रखकर, जुम्मन को बरबस अपनी ओर आकर्षित करते हुए बेचैन-से स्वर मे कब्बू ने पूछा—किसका खत है उस्ताद?

जवाब मे जुम्मन ने खत से आँखें हटाकर कब्बू की ओर मुस्कुराती आँखो से देखा—थोड़ी देर लगातार देखता रह गया फिर कोहनियाँ सरकाकर चित लेट गया। कार्ड छाती पर छोड, दोनो हाथो की उँगलियाँ फँसाकर उसने हथेलियों पर सिर रख दिया, एक लम्बी साँस ली और ऊपर छत की ओर देखने लगा।

बाँस की कमचियों पर कतार से जमे फफुँदियाये खपरैल के एक-एक टुकड़े पर आख अटक गई। पास ही दो खपरैल के बीच की जगह से रोशनी की एक किरन फिसलकर नीचे जाती थी और जुम्मन के सिरहाने के पास धूप का एक उजला-उजला अण्डाकार टुकड़ा लोटता था। बदली छाने पर रोशनी धुँधली हो जाती है और बादल के टुकडो के तैरने-गुजरने का अक्स उसमे साफ-साफ दिखता है। कौतुकवश अपना सिर जरा सरकाकर जुम्मन

ने रोशनी की जगह आँख कर लो। धूप की ऐसी किरन को आँख की पुतली मे झेल लेना सच कैसा लगता है ?

कब्बू बडी देर तक खडा रहा। जुम्मन को शायद याद नही रहा कि आज बुधवार है—बाजार का दिन—और कब्बू को सुबह से जाना पडता है। जुम्मन की मुर्गियाँ कब्बू ही ले जाकर बाजार मे बेचता था। दरअसल, इन्ही छोटे-मोटे कामो के लिए किसी तीसरे दर्जे के सिनेमाहाउस से जुम्मन कब्बू को अपने साथ ले आया था (इस आश्वासन के साथ कि वह गेटकीपरी से अधिक आराम पाएगा और पैसे भी।)

अजुमन की ओर से जुम्मन को केवल पाँच रुपये महीना मिलते थे। रोज तो लोग मरते नही और बेकार बैठना भी अच्छा नही लगता सो देहात से सस्ती कीमत मे मुर्गियाँ लाकर कस्बे मे बाजार के दिन अच्छी कीमत मे बेचने का धन्धा जुम्मन ने अपना लिया था। जब तक साजिदा थी, जुम्मन ने इस धन्धे मे माटी को सोना बनाया था। साजिदा सारी देखभाल खुद करती थी और स्वय जुम्मन बडी दिलचस्पी लेता था लेकिन उसके बाद सब कुछ कब्बू पर छोडकर जुम्मन बेपरवाह हो गया। कहाँ था उसकी जिन्दगी मे वह अटकाव जो आदमी की शाम को सुबह कर देता है ? कहाँ ?

भीतर कही से हूक उठती है—साजोऽऽऽऽ साजोऽऽऽऽऽऽ और साजिदा ढीले-ढाले गरारे-कुरते और हल्दी-मिर्च लगी ओढनी से सिर ढँकती हुई बस जुम्मन की डबडबाई आँख के आगे खडी हो जाती है।

नही रे कब्बू, वह मुर्दा ढोने वाले जुम्मन के लायक नही थी ! उसे इस तकियादारी ने ही मार डाला नही तो चार-आठ दिनो के मोतीझिरा के बुखार मे भला कोई मरता है !

नौकरी लगने के बाद बहुत दिनो तक इसी डर से जुम्मन ने साजिदा को अपने पास नही बुलवाया। किसी तरह जब आई तो पहले-पहल कितना डरती थी। अँधेरा घिर आने के बाद आँगन तक मे अकेली निकलना उससे न होता और पहली कुछ रातें अक्सर वह चौक-चौककर उठ

बैठती और रोने लगती कि ख्वाब मे कोई खौफनाक चेहरे वाला उसके सीने पर बैठकर अपने दोनो हाथो से उसकी गर्दन मरोडने लगता है। जब तक रही उसे सपनो मे भी मुर्दो के सिवाय और कभी कुछ दिखाई न दिया। कफन के कपडो से अक्सर जुम्मन के कुरते-पाजामे बन जाया करते थे लेकिन जीते-जी मुर्दो के जिस्म से उतरे कपडे साजिदा ने कभी नही छुए।

जाने एक दिन उसे क्या हुआ, अचानक बडे सजीदा ढग से पूछने लगी—अच्छा बताओ भला, तुम अब तक कितने मुर्दो को दफन कर चुके हो ?

मुस्कुराकर जुम्मन ने कहा—सैकडो, क्यो क्या बात है ?

क्षणभर चुप रहकर साजिदा बोली—क्या यह सच है कि जो गुनाहगार होते है, मरते वक्त उनका मुँह टेढा हो जाता है ?

—होगा, मैने कभी खयाल नही किया।

साजिदा जुम्मन को गहरी आँखो से देख रही थी, फीके ढग से हँसकर बोली—मेरे मरने के बाद देखना भला कि मै कितनी गुनाहगार थी। सुनकर जुम्मन जैसे रो पडा। उसका सिर अपने बहुत पास खीचकर भर्राई आवाज से उसने कहा—ऐसे न बोल साजो...

कब्बू दूसरी मरतबा सवाल कर रहा था.

—तुम्हारा नाश्ता ढँककर रख दिया है उस्ताद, मै अब बाजार जाऊँ।

जुम्मन हडबडाकर उठा तो छाती पर का कार्ड जमीन पर आ रहा। उसे उठाने-उठाने तक जुम्मन के जेहन से साजिदा की तस्वीर मिट चुकी थी और अनवरी अपने पान-रगे होठ, भरा-पूरा जिस्म और नाक मे चमकती बारीक-सी कील समेत खडी थी !

चौथे दिन साँझ ढलते-ढलते जुम्मन के घर के आगे रिक्शा रुका। साथ मे कब्बू था। रिक्शा के रुकते ही उसमे लगा परदा कब्बू ने अलग किया और अनवरी उतरी। अपने मकान की बालिश्त-भर की खिड़की से देखता

हुआ जुम्मन का शरीर एकाएक थरथरा गया—यह कमबख्त, इसे कभी-कभी क्या हो जाता है ?

वही अनवरी—बिल्कुल वही जैसे चार साल पहले जुम्मन ने साजिदा और अपने ब्याह मे देखा था। बीते चार बरसो ने अनवरी के अग पर अपना कोई निशान नही छोडा । कोई नही । वही कद, वही चेहरा-मोहरा, वही जिस्म और उतना ही आकर्षण !

निकाह के एक दिन पहले किसी रस्म के दौरान मे अचानक पहली बार आकर उस दिन वाली अनवरी कहती है

—जुम्मन भाई मै अनवरी हूँ—साजिदा की मामूजाद बहन ! साजो से बडी होकर भी तुमसे परदा नही करती, देखकर, हँसोगे तो नही ?

मन का भीतर से कही खुल-खुल जाना ही अगर हँसना है तो जुम्मन हँसे बगैर कहाँ रह पाया ? जाने उस अनवरी मे क्या था कि जब किसी रस्मो-रिवाज के सिलसिले मे जुम्मन के पास आ, उसका हाथ पकड उठाती तो वह बस देखता रह जाता कँपता रह जाता और जिस जगह अनवरी की तलहथी रखी होती उतनी जगह उसके चले जाने के बाद भी देर तक जलती रहती ।

और चौथी के दिन की बेबाकी उसे अच्छी तरह याद है जब जुम्मन की आँख मे सुरमा डालती-डालती अचानक बस एकटक ताकने लगी थी । जुम्मन भी डूब गया । उसे कुछ नही मालूम । बस इतना याद है कि उसके पपोटो को अनायास मूँदती हुई अनवरी ने सुरमादानी रख दी और बच्चे सी मचलकर बोली

—ऐसे मे मै नही लगाती सुरमा ।

उसके बाद दोपहर, शाम और रात मे औरतों मे भी उसका ऐसी जगह बैठना कि जुम्मन साफ-साफ उसे देख सके । सुहागगीतो के बीच घिरी-घिराई अनवरी दाहिना घुटना मोडे, बाई पिडली के भार से ढोलक को दबाए हुए उस पर दोनो हाथो की थाप देती हुई बार-बार जुम्मन की ओर देखती है और हँसती है.. देखती है और हँसती है ।

सहसा रिक्शा वाले के लौटने की आहट मिली । देखा सामने कब्बू था और उसके पीछे-पीछे चेहरे का नकाब उल्टे हुए अनवरी आ रही थी ।

रात का खाना रोज की तरह कब्बू ने बनाया । अनवरी बडी देर तक अँधेरे आँगन मे खडी कब्रिस्तान की ओर देख रही थी । भीतर से चिमनी लाकर जुम्मन को दहलीज पर रखते हुए देख उसने पूछा—साजो की कब्र कहाँ है ?

जुम्मन ने कहा—कोने वाले पीपल के नीचे। अहाता घेरकर फूल के बहुत-से पौधे मैंने लगा दिए है । सोचता हूँ, इस साल पक्की करवा दूँगा ।

अनवरी वहाँ से हटकर चारपाई पर बैठ गई । ऐसे कि चिमनी की रोशनी चेहरे पर न पडे । जुम्मन दहलीज से आँगन मे निकल आया लेकिन बडी देर तक दोनो चुप रहे। पहले अनवरी इतनी देर तक चुपचाप जुम्मन के पास बैठ सकती थी ? उसका शौहर महबूब ऐसी बीवी को छोडकर क्या पाएगा ? उसे सुबह आठ बजे से रात ग्यारह बजे तक कपडा सीने की मशीन चलाने के सिवा और कुछ नही आता—कुछ नही आता ।

सहसा अनवरी बोली—मेरी चिट्ठी मिली थी न ?

—हाँ, महबूब अब कहाँ है ?

—मैंने तलाक ले लिया है ।

— सुना है ।

अजीब-से स्वर मे हँसकर अनवरी बोली—मेरी बदनामी की बात भी जरूर सुनी होगी । जानते हो, मै किसके साथ बदनाम हुई हूँ ? जुम्मन न भी जानता हो तो उन सबको जानकर क्या करेगा ? धीरज छोडकर हठात् पूछ बैठता है— अब मुझसे क्या करने को कहती हो ? अनवरी चुप हो गई । चिमनी मे कितनी कम रोशनी होती है, जुम्मन को अब एक लालटेन खरीदनी होगी । साजिदा की कब्र के फूल हवा मे महक रहे होंगे । अब इतने अँधेरे मे भी साजो क्या नही डरती ?

अनवरी बोली—तुम्हारे इस कस्बे मे जीलानी रहते है—किसी दफ़-

तर मे बाबू है । मै उनसे शादी कर रही हूँ । जैसा कि उन्होंने मुझे लिखा था, यही आकर मुझे वह ले जाएँगे। मैने कहा न, तुमसे पूछे बिना मैं कुछ भी नही करूँगी; सो सलाह लेने आई हूँ ।

जरा हटकर जुम्मन ने भी अपना चेहरा अँधेरे मे कर लिया । चट.... चट . यह कहाँ के बद टूट रहे है ? भीतर कही से हूक उठती है—

साजोऽऽऽऽऽ साजोऽऽऽऽऽऽ और साजिदा ढीले-ढाले गरारे-कुरते और हल्दी-मिर्च लगी ओढनी से सिर ढँकती हुई बस जुम्मन की डबडबाई आँख के आगे खडी हो जाती है । और कुछ नही ।

अनवरी को पहुँचाकर जरा देर गए कब्बू लौटा । जीलानी अनवरी को लेने नही आया । बडी देर तक रास्ता देखने के बाद आखिर खुद अनवरी ही कब्बू का साथ करके जीलानी के घर चली गई । जाने कौन अभागा है !

दरवाजा भेडकर कब्बू भीतर आ गया । जुम्मन जाग रहा था । कब्बू की आहट सुनकर खखारकर उसने गला साफ किया और धीमी आवाज मे कहा—कब्बू ?

जब जुम्मन सजीदा होकर चुपचाप पडा रहता है तो उससे अधिक बात करने मे कब्बू डरता है, सक्षेप मे जवाब देकर वह अपने बिस्तर पर लेट गया ।

कब्रिस्तान वाले बड की फुनगी-फुनगी मे रात बेशुमार चमगादड लटके होते है । नीद न आए तो सारी रात उनके डैनो का साँय-साँय करता खुलाव, दरख्त की टहनियो और पत्तो से अनायास टकरा जाने के स्वर और आपस की उनकी चीख सुनाई देती है—किर्र र्र्र्र्र्र्र् किर्र र्र्र्र्र्र्र्र्र्र्र् .

चिक् चिक् चिक् फटाक !

जुम्मन चित लेटा था । दाहिनी करवट बदलकर उसने धुँधली रोशनी मे कब्बू की खाट की ओर देखा और आहिस्ते से बोला—कब्बू

—उस्ताद ।

कब्बू अपने बिस्तर पर उठकर बैठ गया। जुम्मन इतनी रात गए कभी नही जागता। ऐसी बेचैन करवटे लेते हुए कब्बू ने पहले नही देखा।

जुम्मन बोला—कुछ नही, सो जा, अनवरी को छोड आया न ?

—हाँ।

—जीलानी था वहाँ ?

—नही, वह कही बाहर गए है। दो-एक दिनो मे आ जाएँगे।

कई पल चुप रहकर एकाएक जुम्मन हँसने लगा, फिर करवट लेकर बोला—मेरे बाद तकिया तू ही सम्हालेगा न कब्बू ? मै आज कह देता हूँ, देखना, मरते वक्त अनवरी का मुँह जरूर टेढा हो जाएगा।

